हिमालय के
महायोगी
दशरथ नारायण शुक्ल

निष्काम कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, हठयोग तथा राजयोग के माध्यम से जो व्यक्ति शाश्वत शान्ति, सनातन सुख, अखण्ड आनन्द एवं चिरन्तन चैतन्य की प्राप्ति से निरन्तर ओत-प्रोत रहता है, वह महायोगी होता है। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा ध्यान तथा साधना की सर्वोच्च स्थिति समाधि में उसकी सहज गति होती है। अनेकों असाधारण शक्तियाँ उसकी सिद्धियाँ होती हैं। ऐसा योगी स्वार्थ से ऊपर उठकर, परमार्थ के लिए समाज, देश तथा विश्व के मंगल एवं कल्याण के निमित्त कार्य करता है।

कालिदास के शब्दों में हिमालय 'देवतात्मा' है। हिमालय विश्व का सर्वाधिक ऊँचा पर्वत है। इसे विश्व के महान् योगियों का निवास स्थान माना गया है। योगपरक ग्रन्थों में इसके संबंध में विस्तार से लिखा गया है। यहाँ के महायोगी अधिकांशतः समाधि में लीन् रहते हुए विश्व मानव के कल्याण के लिए दूरदर्शन की तरह, अपनी भाव-तरंगों द्वारा विश्व में शान्ति के भाव विकीर्ण करते रहते हैं। वे समाज के कुछ अति श्रेष्ठ व्यक्तियों से सीधा संबंध रखकर, उनके माध्यम से लोगों में त्याग, अहिंसा, कर्मठता, ज्ञान. भक्ति तथा कर्त्तव्यपरायणता की भावनाओं का प्रचार-प्रसार करते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में श्री दशरथ नारायण शुक्ल ने हिमालय के श्रेष्ठ एवं दुर्लभ योगियों के बारे में जानकारी प्रदान की है। इसके लिए श्री शुक्ल प्रशंसा के पात्र हैं। आशा है कि श्री शुक्ल भविष्य में भी इस प्रकार की पुस्तकों का प्रणयन करते हुए समाज में योग तथा अध्यात्म के प्रचार में अपना योगदान देते रहेंगे एवं भारतीय चेतना को प्रबुद्ध करने में सहायक होंगे।

रमेश चन्द्र त्रिपाठी
सचिव
संसदीय कार्य मंत्रालय
संसद भवन
(भारत सरकार) नई दिल्ली

हिमालय के
महायोगी

हिमालय के
महायोगी

दशरथ नारायण शुक्ल

प्रकाशतक
चैतन्य पब्लिकेशन्स
योग वेदान्त कुटीर
त्रिवेणी बांध (संगम) इलाहाबाद
द्वितीय संस्करण – १९९७
मूल्य : पचास रुपये

लेजर कम्पोजिंग
जी कम्प्यूटर्स, इलाहाबाद

प्रिन्टर्स
राजीव ऑफसेट एण्ड प्रिन्टर्स (प्रा०) लि०,
इलाहाबाद

The Great Yogies of Himalaya **By : Dashrath Narayan Shukla**

भारतीय साहित्य के आधुनिक वेदव्यास
ब्रह्मलीन आचार्य श्रीराम शर्मा
को
सादर समर्पित

पुरोवाक्

परम पावन हिमालय जहाँ भौगोलिक दृष्टि से विश्व का सर्वोच्च गिरिराज है, वहीं आध्यात्मिक तथा पौराणिक दृष्टि से योगीश्वरों तथा महामनीषियों का निवास स्थल भी है। आदि देव भगवान् शंकर के बारे में यह मान्यता है कि उन्होंने यहाँ पर सत्तासी हजार वर्ष की समाधि लगाई थी। ब्रह्मर्षि महामुनि भृगु ने भी हिमालय में दस हजार वर्ष की समाधि निष्पादित की थी। वेद व्यास के महाज्ञानी सुपुत्र शुकदेव के भी हिमालय में ही दस हजार वर्ष तक समाधिस्थ रहने का उल्लेख है।

कुछ लोग यह आशंका कर सकते हैं कि मनुष्य की आयु ही इतनी नहीं होती। सामान्यतः मनुष्य अधिकतम १०० वर्ष तक ही जीवित रहता है। तब वह हजारों वर्षों तक कैसे समाधिस्थ रह सकता है?

इस संबंध में यह ज्ञातव्य है कि निर्विकल्प समाधि की अवस्था में व्यक्ति पूर्णतः चैतन्य में लीन रहता है। उसमें इतनी अधिक चेतना तथा ताजगी रहती है कि उसका अन्तःकरण चतुष्टय तथा शरीर क्षीण नहीं होता। समाधि तथा ध्यान से व्यक्ति की आयु बढ़ती है। यदि किसी की उम्र ८० वर्ष नियत है, परन्तु वह १० वर्षों तक समाधि लगा लेता है, तो उसकी उम्र बढ़कर ६० वर्ष हो जायेगी। समाधि लगाने वाला योगी जब तक चाहे, जीवित रह सकता है। लम्बी-लम्बी समाधियाँ लगाने वाला महायोगी किसी की मृत्यु को टाल सकता है या मृत व्यक्ति को जीवित कर सकता है। महा समाधियों में लीन रहने वाले योगेश्वर शंकर ने अल्पायु मार्कण्डेय की मृत्यु को टालकर उन्हें बहुत लम्बी आयु प्रदान कर दी।

मैं स्वयं कई योगियों को व्यक्तिगत रूप से जानता हूँ। इनमें से एक महायोगी ऐसे थे, जिन्होंने एक समाधि २ वर्ष की तथा एक माधि २ वर्ष २४ दिन की लगाई थी।

मैं इन महायोगियों के आशीर्वाद का असाधारण प्रत्यक्ष प्रभाव भी देख चुका हूँ। उनकी इच्छाएं ही शासनादेश, उच्चतम न्यायालय की व्यवस्था तथा संविधान के अनुच्छेद बन जाती हैं। वे संतरी को मंत्री, भिखारी को अरबपति, कमजोर को महाशक्तिशाली बना सकते हैं। मुर्दे को जीवित कर देना भी उनके लिए असंभव नहीं है।

कुछ महायोगी स्थूल शरीर में रहकर जगत् का कल्याण करते हैं, कुछ सूक्ष्म शरीर मे रहकर साधकों का मार्गदर्शन करते हैं तथा कुछ योगेश्वर कारण शरीर में रहकर महायोगियों तथा महासाधकों को प्रेरणा देते हैं।

हिमालय महायोगियों की निवास स्थली तथा विचरण भूमि है। गोरखनाथ, वेदव्यास, महावतार बाबा, मथुरादास बाबा तथा सर्वेश्वरानन्द आदि सभी महायोगी एवं महामुनि मुख्यतः हिमालय में निवास करते हैं। विश्वसनीय रूप से ऐसी मान्यता है कि हिमालय में हजारों कन्दराएं हैं। इनमें से कुछ छोटी हैं, तो कुछ इतनी विशाल कि उनमें सैकड़ों लोग एक साथ बैठ सकते हैं। इन्हीं कन्दराओं में ये महायोगी समाधिस्थ रहते हैं। वे समाधि में लीन रहते हुए विश्व में शान्ति की तरंगों को रेडियो तथा दूरदर्शन की तरंगों की तरह विकीर्ण करते रहते हैं।

महायोगियों के मुख से सुनकर, ग्रन्थों में पढ़कर तथा गंभीर रूप से विचार करने के बाद मेरी धारणा है कि यहाँ वे भी योगी हैं, जो एक दिन की समाधि लगाते हैं तथा वे भी महायोगी हैं- जो सैकड़ों वर्षों तक समाधि में लीन रहते हैं। उनके महासमाधि में लीन रहने से विश्व में शान्ति के भाव विकीर्ण होते हैं तथा महासाधकों को प्रेरणा मिलती है।

ऐसी मान्यता है कि ईश्वरीय सत्ता को जब विश्व में सत्त्वगुण का प्रचार करना होता है, तो वह इन्हीं महायोगियों को प्रेरित करती है तथा वह दिव्य सन्देश इनके माध्यम से समाज में कार्यरत श्रेष्ठ पुरुषों के द्वारा जन जन तक पहुचाती है। ये महायोगी विश्व के मानवों को भीषण बीमारियों तथा महाभयंकर युद्धों से बचाने के लिए यथासमय ग्रहों की घातक स्थितियों में परिवर्तन कर देते हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में जिन महायोगियों तथा योगेश्वरों का उल्लेख किया गया है, उनके स्मरण मात्र से शान्ति मिलती है। शान्त तथा एकाग्र मन वाला व्यक्ति ही जीवन में सुख, शान्ति, समृद्धि तथा सफलता प्राप्त करता है। इन योगिराजों के स्मरण एवं चिन्तन मनन से जहाँ एक ओर लोगों को सुयश, समृद्धि, सम्मान तथा सत्ता मिलेगी, वहीं इनसे अतिशय लगाव रहने वाले एवं मार्गदर्शन लेने वाले महानुभावों को अनासक्त रहकर कर्म करते हुए शाश्वत शान्ति, परमानन्द तथा मोक्ष की भी प्राप्ति होगी। स्वार्थ का त्याग कर परमार्थ के पथ पर चलने वालों की संख्या बढ़ने पर समाज, देश तथा विश्व मानवों को समृद्धि, सुख तथा शान्ति की प्राप्ति होगी।

दशरथ नारायण शुक्ल
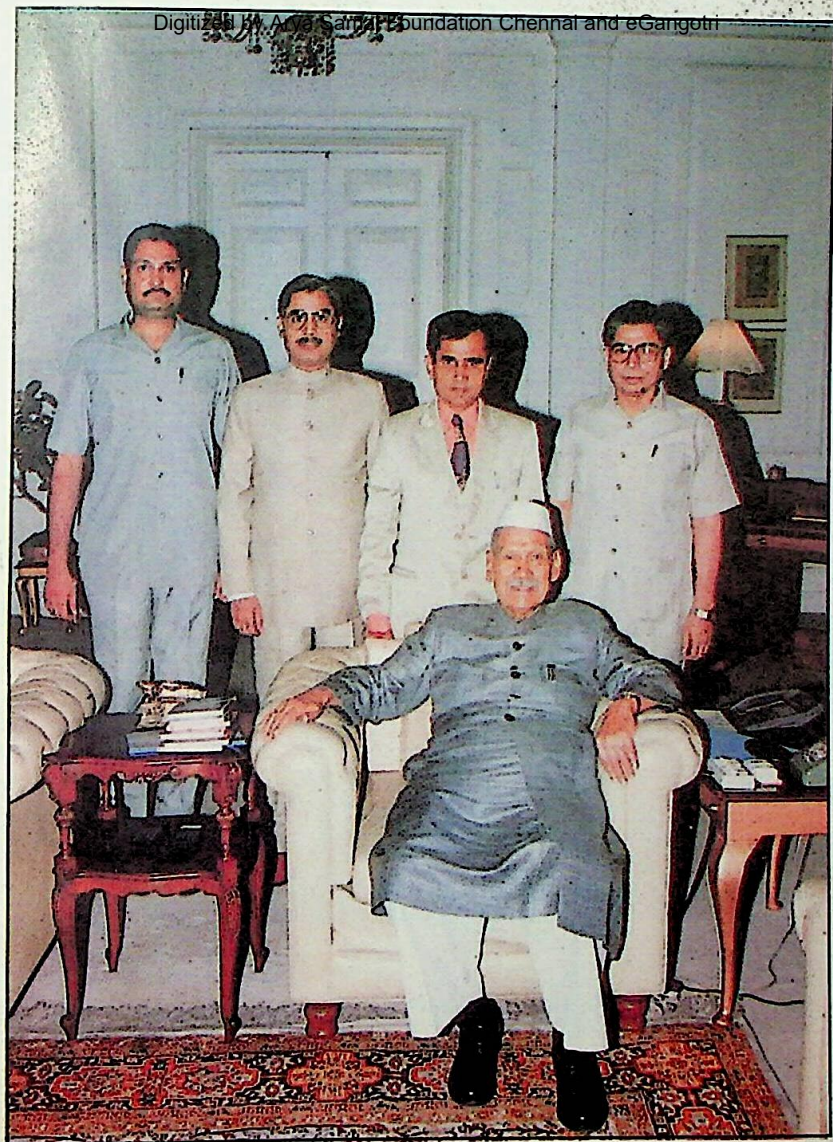
राष्ट्रपति-भवन, नई दिल्ली में २८ सितम्बर, १९९६ को 'हिमालय के महायोगी' के अर्पण के अवसर पर भारत के राष्ट्रपति डा० शंङ्कर दयाल शर्मा, (दाहिने से) भारत के संसदीय कार्य-मंत्रालय के सचिव श्री आर० सी० त्रिपाठी, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के लेखक श्री दशरथ नारायण शुक्ल तथा भारत के आई० पी० एस० एसोसिएशन के सचिव एवं भारत के नागरिक उड्डयन के कमिस्नर (सुरक्षा) श्री एस० सी० त्रिपाठी तथा नई दिल्ली के सहायक आयुक्त (आयकर) श्री संजय अवस्थी।

'ध्यान के दिव्य अनुभव तथा महाशक्तियाँ' के २९.१२.९६ को अंधेरी स्पोर्ट्स काम्प्लेक्स- मुम्बई में लोकार्पण के अवसर पर भारत के शिव सेना प्रमुख श्री बाला साहब ठाकरे, महाराष्ट्र के मुख्यमंत्री श्री मनोहर जोशी तथा अन्तर्राष्ट्रीय लेखक श्री दशरथ नारायण शुक्ल। लोकार्पण का सीधा प्रसारण सोनी दूरदर्शन नेटवर्क द्वारा विश्व के ६५ देशों में किया गया था तथा बाद में जी टी० वी० ने भी इसे प्रसारित किया था।
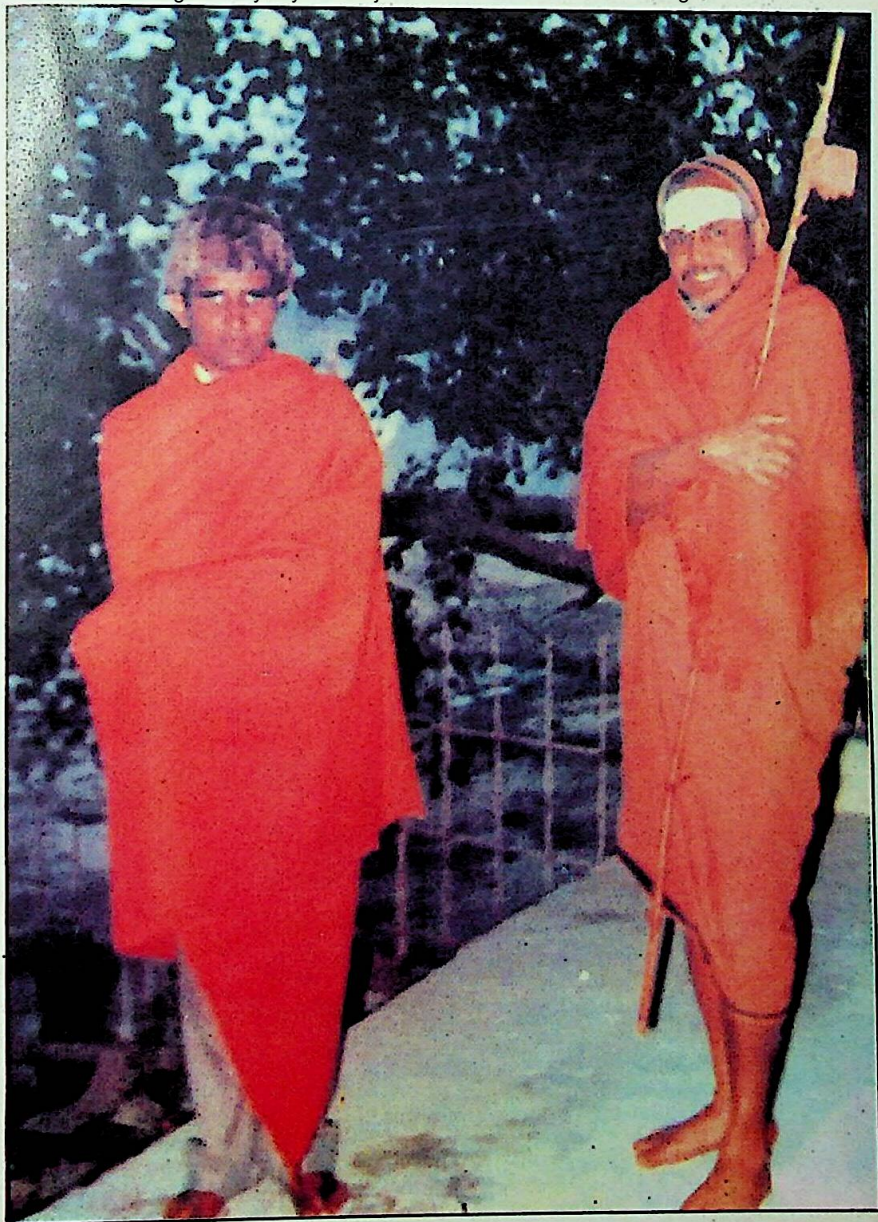
अन्तर्राष्ट्रीय लेखक
श्री दशरथ नारायण शुक्ल

जगत् गुरु शङ्कराचार्य
स्वामी जयेन्द्र सरस्वती, काञ्ची
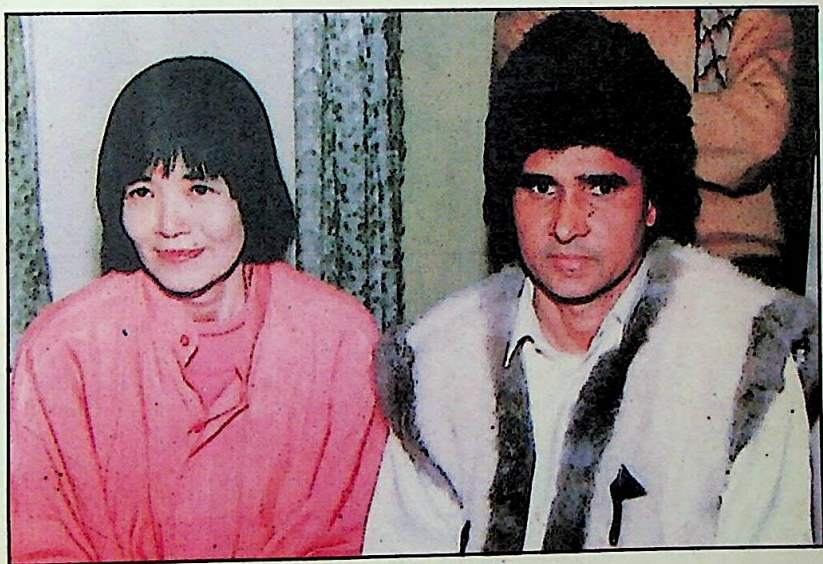
अन्तर्राष्ट्रीय लेखक श्री दशरथ नारायण शुक्ल के साथ हिमालय के योगिराज हरी बाबा की शिष्या - अन्तर्राष्ट्रीय महायोगिनी – जापान की केइको आइकवा

अनुक्रमणिका

★

योगेश्वर महातपा (सिद्धाश्रम)

कितना पवित्र नाम है- हिमालय। महायोगियों, योगिराजों, योगेश्वरों की समाधि-स्थली। दशाब्दियों, शताब्दियों, सहस्राब्दियों से महासमाधि में लीन अनेकों महायोगी मिल जायेंगे, आपको हिमालय में। महासमाधि में लीन ये महामानव सम्पूर्ण विश्व को महाचैतन्य, उत्कृष्ट चेतना, परमशान्ति की तरंगों में आप्लावित किये हुए हैं। यदि ज्ञानियों तथा तत्त्ववेत्ताओं को कभी मानसिक अशान्ति हुई तो वे जैसे ही हिमालय के महासमाधि में लीन योगियों का ध्यान करते हैं, वैसे ही उनकी मानसिक शान्ति लौट आती है। रात्रि में सोते समय यदिं कभी मेरी नींद टूट जाती है तथा नींद टूटते ही यदि हिमालय के इन् महासमाधिस्थ योगियों का स्मरण हो आता है तो तुरन्त पुनः नींद आ जाती है। रात्रि में सोते समय भी यदि नींद नहीं आ रही है तो इन समाधि में महालीन योगियों का ध्यान करने पर नींद आ जाती है। प्रातः ध्यान में बैठने पर इन योगेश्वरों का ध्यान आ जाने पर मन बड़ी तल्लीनता से ध्यान में समाहित हो जाता है। जहाँ भी जब भी, परमपद में लीन इन योगिराजों का ध्यान आया, तुरन्त शान्ति मिलती है।

महायोगेश्वर शंकर जी ने हिमालय में ही सत्तासी हजार वर्ष की महासमाधि लगाई थी। ब्रह्मर्षि भृगु ने भी हिमालय में ही दस हजार वर्ष की समाधि लगाई थी। वेदव्यास के पुत्र शुकदेव ने हिमालय में ही मेरु नामक पर्वतीय खण्ड में दस हजार वर्ष की समाधि ली थी। विश्व के सबसे कम उम्र के सर्वोत्तम परमतत्त्व वेत्ता शंकराचार्य हिमालय के बद्रीनाथ क्षेत्र में चार वर्षों तक रहे थे। यहीं पर उन्होंने ब्रह्मसूत्र आदि पर अपने भाष्यों की रचना की थी तथा एकान्त में प्रायः समाधि में लीन रहा करते थे। अमर योगी गोरखनाथ की समाधि स्थली तथा भ्रमणस्थली रहा है, हिमालय।

अध्यात्म के विचारकों तथा मनीषियों की दृष्टि में हिमालय दैवी चेतन सत्ता के संचालन की कार्यस्थली है। जलधारा वाली गंगा ही नहीं, देवलोक की ज्ञान गंगा का अवतरण एवं प्रवाह भी इसी क्षेत्र से प्रारम्भ होता है। यह महान् साधनारत ऋषि मुनियों की तपस्थली एवं अध्यात्म चेतना का केन्द्र है। श्रीमद्भागवत में हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र में सिद्ध सन्तों का निवास बताया गया है, जो सम्पूर्ण जगत् की कल्याण की कामना से सतत तपश्चर्या में निरत रहते हैं तथा सूक्ष्म शरीर धारी होते हैं। थियोसोफिकल सोसाइटी की संस्थापिका मैडम ब्लैवट्स्की इसे सिद्धों

की पार्लियामेंट मानती हैं। 'आटोबाएग्राफी आफ ए योगी', 'लिविंग विद द हिमालय मास्टर्स', 'भारत के महान् साधक' तथा 'हिमालय कह रहा है' आदि ग्रन्थों में हिमालय क्षेत्र में रहने वाले योगेश्वरों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व के बारे में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है।

दिव्य तत्त्ववेत्ताओं का मानना है कि ब्रह्माण्ड की सघन अध्यात्म चेतना का पृथ्वी पर सघन अवतरण भू-चुम्बकीय व आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण इसी क्षेत्र में होता है। जो मान्यता भौगोलिक दृष्टि से उत्तरी ध्रुव तथा दक्षिणी ध्रुव को मिली है, वही अध्यात्म क्षेत्र में हिमालय के उत्तराखण्ड क्षेत्र को मिली है। इस क्षेत्र में गुफाएँ, कन्दराएँ, झरने, मनोरम प्राकृतिक स्थल, गुप्त वासस्थान इतने अधिक हैं कि यहाँ रहकर साधना की गहराइयों में जाना साधकों तथा सिद्धों के लिए सुगम रहता है। तपस्वीगण एक प्रकार से अध्यात्म विज्ञान के शोधकर्ता एवं विभूति उत्पादक कहे जा सकते हैं। पतंजलि, चरक, आर्यभट्ट की साधना स्थलियाँ तथा शोधशालाएँ यहीं थीं, जिनमें शरीर यंत्र और मनःतन्त्र के भीतर छिपी शक्तियों तथा रहस्यों का उद्घाटन होता था। इस क्षेत्र में संजीवनी बूटी, रूदन्ती, ब्रह्म कमल एवं अमृतोपम जड़ी बूटियाँ मिलती हैं। बहुमूल्य धातुओं की खदाने भी यहाँ हैं।

हिमालय में छोटे-बड़े कई आश्रम हैं, जिनमें से कुछ में अत्युच्च कोटि के सिद्ध सन्त एवं योगीजन निवास करते हैं। इनमें से कुछ जन सामान्य द्वारा देखे जा सकते हैं किन्तु कुछ में केवल विशिष्ट साधक ही पहुँच सकते हैं।

हिमालय में कैलाश मानसरोवर से उत्तर की ओर सिद्धाश्रम स्थित है। यह कई सौ मील के घेरे में स्थित है। यहाँ पर अनेकों योगी ऐसे हैं, जिनकी आयु कई सौ वर्ष है। यहाँ पर कुछ योगी कई हजार वर्ष की आयु वाले हैं। इस आश्रम में योगेश्वर श्रीकृष्ण, द्रोणाचार्य, भीष्म, कृपाचार्य, युधिष्ठिर, वशिष्ठ, विश्वामित्र, पुलस्त्य, कणाद एवं अत्रि आदि ब्रह्मर्षि, महर्षि एवं राजर्षि विचरण करते देखे जा सकते हैं। इनके अलावा अन्य अज्ञातनाम योगी यहाँ सैकड़ों वर्षों से समाधिस्थ हैं। योगियों की तरह योगिनियाँ, ब्रह्मवादिनियाँ तथा भैरवियाँ भी यहाँ विचरण करती हुई मिल जायेंगी। यहाँ के लोगों के लिए सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह आदि गुण जीवन में धारण करना बड़ी सामान्य बातें हैं तथा छल, कपट, द्वेष आदि से दूर रहना उनके जीवन का सहज अंग है।

यहाँ पर एक सिद्ध योग झील है, जिसका जल अत्यन्त निर्मल तथा ओषधि तुल्य है। इसमें स्नान करने से रोग नष्ट हो जाते हैं तथा वृद्धावस्था पास नहीं आती।

झील के किनारे स्फटिक की नावें पड़ी हैं, जिन पर बैठकर योगीजन झील में स्वेच्छानुसार विचरण करते हैं।

सम्पूर्ण क्षेत्र सुगन्धित पुष्पों से आच्छादित है। धरती हरी दूब, फूल एवं फलदार वृक्षों से भरी हुई है। शीतल, मन्द तथा सुगंधित वायु सदा प्रवाहित होती रहती है। स्थान-स्थान पर साधु, सन्त तपस्या में निरत हैं। सुन्दर पर्णकुटियों को देखकर उनमें बैठने को जी चाहता है।

यह ऐसा सिद्धाश्रम है, जिसे स्थूल तथा सूक्ष्म दोनों कहा जा सकता है। सूक्ष्म इसलिए कि यहाँ केवल वही योगी जा सकता है, जो पहले से ही एक श्रेष्ठ योगी है, जो पहले से ही काफी अंशों में सिद्ध है। एक सामान्य व्यक्ति यहाँ पहुँच ही नहीं सकता तथा हेलीकाप्टर से इसके चित्र नहीं प्राप्त किये जा सकते। यह आश्रम स्थूल इस दृष्टि से है कि जो एक सिद्ध व्यक्ति है, जो परमपद में स्थित है तथा जिसे यहाँ के योगी बुलायें, वह यहाँ आसानी से पहुँच सकता है तथा सब कुछ देख सकता है।

हिमालय के संभवतः इसी क्षेत्र में ज्ञानगंज के नाम से एक अन्य सिद्ध ज्ञानाश्रम है। यह या तो विशाल सिद्धाश्रम का ही एक अंग है या इससे कुछ अलग हटकर है। यह हिमालय के तिब्बती क्षेत्र में लगभग १२ कि०मी० के घेरे में स्थित है। इसका पूर्व का नाम 'इन्द्र भवन' था। मध्यकाल में अव्यवस्था के कारण यह अपना रूप खो चुका था। योगेश्वर महातपा के एक प्रमुख शिष्य स्वामी ज्ञानानन्द परमहंस द्वारा इसका पुनरुद्धार किया गया। पुनरुद्धार का कार्य अब से लगभग ६१३ वर्ष पूर्व हुआ था। अब यह एक अलौकिक साधनापीठ है। जहाँ के योगी, परमहंस, भैरवियाँ 'अहं ब्रह्मास्मि' के भाव से युक्त रहते हुए आत्म राज्य में विचरण करती हैं।

यहाँ के सर्वश्रेष्ठ योगिराज महर्षि महातपा हैं। इनकी आयु चौदह सौ वर्षों से अधिक है। योगिराज का शरीर एक सिद्ध देह बन गया है तथा देश, परिस्थिति तथा काल की सीमाओं से परे जा चुका है। वे किसी भी लोक या ग्रह में इच्छानुसार आ जा सकते हैं। योगिराज ज्ञानगंज आश्रम में स्थाई रूप से निवास नहीं करते। तिब्बत क्षेत्र के पर्वतों में एक विशाल गुफा में राजराजेश्वरी देवी की मूर्ति प्रतिष्ठापित है। इस स्थल का नाम राजेश्वरी मठ पड़ गया है। यहाँ पर ज्ञानगंज आश्रम की तरह अनेक मठ हैं, जो सब राजेश्वरी देवी के नियंत्रणाधीन हैं। योगिराज का स्थाई निवास किसी मठ में नहीं है। वे कभी-कभी ज्ञानगंज योगाश्रम में आ जाते हैं, तो कभी-कभी गुरु-माता क्षेपा माई के पास 'मनोहर तीर्थ' चले जाते हैं।

योगिराज महातपा के शिष्यों में योग के सबसे बड़ा ज्ञाता महायोगी भृगुराम परमहंस हैं। एक प्रकार से ये योग के विभागाध्यक्ष हैं। वे योग के गूढ़तम रहस्यों के मर्मज्ञ हैं। योग की आपको सर्वांगीण जानकारी है। अष्टांग योग, हठयोग, लय योग, परकाया प्रवेश, सविकल्पक समाधि, निर्विकल्पक समाधि तथा योग की अन्य अनेकों गुप्त प्रणालियों के आप सांगोपांग जानकार हैं। योग की कोई विधा आपसे अछूती नहीं है। मठ में रहने वाले विद्यार्थी तथा योगी आपके मार्गदर्शन में योग सम्बन्धी जानकारी में पूर्णता प्राप्त करते हैं तथा योग की गुत्थियों को सुलझाते हैं। योग के सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक दोनों ही पक्षों की जानकारी के महर्षि भृगुराम जी चूडान्त निदर्शन हैं। उस पर्वतीय क्षेत्र में राजेश्वरी शासन के अधीन जितने मठ हैं, उनके प्रधान अधिष्ठाता योगिराज भृगुराम जी ही हैं। भृगुराम जी में अनन्त शक्तियाँ हैं। वे कहीं भी किसी भी समय प्रकट हो सकते हैं।

ज्ञानगंज आश्रम में विज्ञान के प्रधान आचार्य परमहंस श्यामानन्द हैं। विज्ञान की सारीं शिक्षाओं का दायित्व इन्हीं के कन्धों पर है। छात्र-छात्राओं को विज्ञान के विभिन्न अंगों, उपांगों की शिक्षा देना इन्हीं का दायित्व है। ये प्रकृति के विभिन्न पदार्थों तथा क्रियाकलापों की सूक्ष्मतम जानकारी रखते हैं। सूर्य विज्ञान, चन्द्र विज्ञान, नक्षत्र विज्ञान, वायु विज्ञान आदि का आपको पूर्ण ज्ञान है। इन विज्ञानों में सूर्य विज्ञान का ज्ञान सर्वोपरि है। सूर्य विज्ञान का सांगोपांग ज्ञान हो जाने पर अन्य विज्ञानों का ज्ञान आसानी से हो जाता है। इन विज्ञानों के माध्यम से अनेक दुर्लभ तथा बहुमूल्य वस्तुओं का सृजन किया जा सकता है। यहाँ तक कि हीरा, पन्ना तथा नीलम जैसे बहुमूल्य रत्न भी इनके द्वारा बनाए जा सकते हैं।

यद्यपि परमहंस भृगुराम तथा परमहंस श्यामानन्द क्रमशः योग तथा विज्ञान विभागों के प्रधान आचार्य हैं, परन्तु योगेश्वर महातपा के बाद आश्रम के सर्वाधिक शक्तिसम्पन्न महायोगी परमहंस ज्ञानानन्द हैं। उन्हीं के द्वारा अनादिकाल से चले आ रहे इस आश्रम का पुनरुद्धार किया गया है। इस समय उनकी आयु लगभग आठ सौ वर्ष होगी। वे ब्रह्मर्षि महातपा के प्रधानतम शिष्य हैं। योग तथा विज्ञान दोनों में ही उनकी अबाध गति है तथा अन्य विधाओं के भी वे मर्मज्ञ हैं। वे सर्वतोन्मुखी प्रतिभा के धनी योगी हैं। वे आत्माराम में विचरण करते हैं। बड़े सौभाग्यशाली व्यक्तियों को ही उनका दर्शन हो पाता है।

विद्यार्थियों में ब्रह्मचारी युवा वर्ग आता है। ये आश्रम में विद्योपार्जन तक पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। भिन्न-भिन्न आचार्य प्रथम कक्षा से अंतिम कक्षा तक की शिक्षा देते हैं। भारत में प्रचलित शिक्षा प्रणाली से यहाँ की शिक्षा

इस अर्थ में भी भिन्न है कि यदि कोई छात्र अधिक कुशाग्रबुद्धि तथा मेधावी होता है तो उसे अगली कक्षा या सीढ़ी में पदोन्नति दे दी जाती है। सभी छात्र बड़े प्रेम से भाइयों की तरह रहकर शिक्षा ग्रहण करते हैं।

ब्रह्मचारी छात्रों की तरह ब्रह्मचारिणी कुमारियाँ भी यहाँ शिक्षा ग्रहण करती हैं। वे भी सम्पूर्ण विद्याध्ययन काल में नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करती हैं। ब्रह्मचारियों तथा ब्रह्मचारिणियों का व्यवहार आपस में भाई-बहन की तरह रहता है।

विद्यार्थियों के अलावा दीक्षा लेने के बाद साधना करते-करते सिद्धि प्राप्त कर लेने वाले सिद्धों तथा परमहंसों की संख्या भी यहाँ सैकड़ों में हैं। इनकी आयु दो सौ वर्ष से लेकर कई सौ वर्षों की है।

इस ज्ञानगंज में विद्या ग्रहण करने वालों में विश्वविख्यात महायोगी स्वामी विशुद्धानन्द का नाम बहुचर्चित है। ये पश्चिमी बंगाल के वर्धमान नगर से चौदह मील दूर बंडूल नामक गाँव में पैदा हुए थे। बाल्यावस्था का इनका नाम भोलानाथ था। बात लगभग १८६६-६७ की है। उस समय भोलानाथ की आयु मात्र १४-१५ वर्ष की थी। एक दिन घर की सीढ़ी से नीचे उतरते हुए भोलानाथ का पैर एक कुत्ते पर पड़ गया। कुत्ते ने भोलानाथ को काट लिया। कुत्ता पागल था, अतः उसका विष भोलानाथ के शरीर पर तुरन्त असर करने लगा। भोलानाथ के बाबा वैद्य थे, अतः उन्होंने तुरन्त बालक की चिकित्सा आरम्भ कर दी। कोई लाभ होता न देखकर बालक को गौदलपाड़ा ले जाया गया। यहाँ पागल कुत्ते के काटने की दवा दी जाती थी। भोलानाथ को भी दवा दिलवाई गई, परन्तु उसका कोई असर नहीं हुआ।

विष धीरे-धीरे सारे शरीर में फैलता गया तथा उससे भयंकर पीड़ा होने लगी। इस पर बालक को हुगली ले जाया गया। यहाँ पर पागल कुत्ते काटने की दवा करने वाले अनेकों वैद्य थे, परन्तु उनकी चिकित्सा भी निष्फल गई। अब घर वाले निराश हो गए तथा भोलानाथ की जीवन की आशा छोड़ बैठे। शरीर में होने वाली भयंकर पीड़ा से छुटकारा पाने के लिए भोलानाथ ने शरीर से छुटकारा पाना ही बेहतर समझा। अस्तु, उन्होंने सोचा कि अच्छा यही होगा कि गंगा जी में डूबकर प्राण त्याग दिए जायँ।

अन्ततः एक दिन भोलानाथ ने संध्या समय गंगा तट की ओर प्रस्थान किया। भोलानाथ ने सोचा कि आज उसके जीवन का अन्तिम दिन है। वे डूबने के लिए भगवती भागीरथी की धारा में प्रवेश करने वाले ही थे कि उन्होंने देखा कि एक जटाजूटधारी महात्मा गंगा में स्नान कर रहे हैं तथा गंगा की पुनीत जलधारा में वे

जब गोते लगाते हैं तो गंगा जी का जल स्तूप की भाँति, उनके गोते से निकलने पर, ऊपर की ओर उठ जाता है। ऐसे महिमामय महात्मा को देखकर भोलानाथ विस्मय विमूढ़ हो गये। उनके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा। उनके मन को सम्बल मिला। आशा की किरण फूटी। महायोगी ने भोलानाथ की ओर देखकर कहा कि बेटे क्यों घबड़ा रहे हो। ठहरो, हम तुम्हें अभी ठीक किये देते हैं।

योगिराज जल से बाहर आए। उन्होंने भोलानाथ के सिर पर अपना पुनीत हाथ रखा। भोलानाथ को ऐसा लगा कि जैसे विष से जल रहे उनके शरीर पर बर्फ की सिल्ली रख दी गयी हो। उन्हें अपूर्व शीतलता का अनुभव हुआ। नस-नस में जैसे अमृत का संचार होने लगा। शरीर की सारी पीड़ा तथा जलन शान्त हो गयी। तदनन्तर महायोगी ने वहीं से एक जड़ी उखाड़कर भोलानाथ को खिला दी तथा कहा कि तुम्हारे अन्दर से अब सारा विष पेशाब के रास्ते से बह जायेगा। योगिराज ने कहा कि तुम अब अपने घर जाओ। मरने की बात बिलकुल मन से निकाल दो। अभी मृत्यु तुम्हारा कुछ नहीं कर सकती। तुम एक दीर्घजीवी योगी बनोगे।

भोलानाथ के आनन्द का ठिकाना नहीं रहा। मृत्यु के स्थान पर उन्हें अमृत मिल गया। कंगाल से उन्हें मानो राजा बनने का वरदान मिल गया। उनके अब तक के जीवन का यह सर्वाधिक आह्लाद, आनन्द, प्रसन्नता तथा खुशी का दिन था। भोलानाथ के घर पहुँचने पर सारे परिजनों में आनन्द की लहर छा गयी। उनकी माता की खुशी का ठिकाना न रहा।

महायोगी के प्रति श्रद्धा तथा कृतज्ञता से भोलानाथ का मन आप्लावित हो गया। उन्हें लगा कि मेरे शरीर का तो नाश ही होने जा रहा था, परन्तु महायोगी की कृपा कटाक्ष से उसे दीर्घ जीवन मिल गया। इस शरीर पर वस्तुतः अब योगी का ही स्वामित्व है। अतः इसे आप योगी जी के मार्गदर्शन में ही सौंप देना चाहिए। इसके साथ ही वे योगिराज के महाप्रभाव को देख चुके थे। उनकी योग विभूतियों की उन्हें प्रत्यक्ष अनुभूति प्राप्त हो चुकी थी। अतः उन्होंने सोचा कि यदि योगी जी का मार्ग-दर्शन एवं प्रश्रय प्राप्त हो जाएगा तो हमारा जीवन भी धन्य हो जाएगा। इसके लिए पहले उन्होंने माँ की स्वीकृति लेना आवश्यक समझा। अस्तु, उन्होंने माँ से योगिराज के साथ जाकर संन्यास दीक्षा की अपनी अभिलाषा कह सुनाई। उन्हीं योगी जी की कृपा से तुम्हें नया जीवन दान मिला है। अस्तु, उनके साथ तुम्हें भेजने में हमें खुशी होगी, परन्तु कभी कभी माँ को भी याद कर लिया करना। भोलानाथ को यह आशा नहीं थी कि माँ इतनी सरलता से अपनी स्वीकृति दे देंगी। परन्तु

माँ की आज्ञा पाकर उन्हें अत्यन्त प्रसन्नता हुई। जीवन के परमलक्ष्य का मार्ग उन्हें अत्यन्त नजदीक दिखाई पड़ा।

दूसरे दिन उसी समय संध्याकाल भोलानाथ पुनः उसी स्थान पर भगवती भागीरथी के किनारे जा पहुँचे। महायोगी का उन्हें पुनः दर्शन हुआ। भोलानाथ ने अपनी मनोकामना उन्हें कह सुनाई। योगिराज ने कहा कि तुम्हारा नियत गुरु मैं नहीं हूँ। मैं कभी तुम्हें तुम्हारे गुरु के पास ले चलूँगा। तब तक के लिए मैं तुम्हें एक आसन तथा बीजमंत्र बताए देता हूँ। तुम आसन पर बैठकर बीजमंत्र जप करते रहना। इससे तुम्हारा तन तथा मन पवित्र होगा।

भोलानाथ निराशा के साथ घर लौट गए। कई दिनों तक पेशाब के साथ विष के कतरे निकलते रहे और इस प्रकार से सारा विष शरीर से बाहर निकल गया।

इसके बाद भोलानाथ को पढ़ने के लिए घर से वर्धमान भेज दिया गया। वहाँ से कांचन नगर मेरु में रहकर पढ़ने लगे। यहाँ पर हरिपद नामक विद्यार्थी उनका घनिष्ठ मित्र बन गया। वर्धमान में पढ़ते हुए दो साल बीत गए, परन्तु उन महायोगी का कोई पता नहीं चला।

वर्दमान में विश्वरूप साहू की दुकान पर भोलानाथ एक दिन कुनैन की गोलियाँ खरीदने गए हुए थे। वहाँ एक मुसलमान सज्जन बता रहे थे कि ढाका में एक योगी आए हुए हैं। जब वे नदी में डुबकी लगाकर ऊपर की ओर उठते हैं तो नदी का जल उनके साथ स्तूपाकार में ऊपर उठता है। भोलानाथ के पूछने पर पता चला कि वे महायोगी ढाका के नवाब के रमना के मैदान में ठहरे हुए हैं। भोलानाथ जान गए कि ये उनकी प्राणरक्षा करने वाले महायोगी ही हैं। अतः भोलानाथ को बड़ी प्रसन्नता हुई।

भोलानाथ ने सोचा कि योगी जी के साथ जाने के पूर्व माँ की स्वीकृति ले लेनी चाहिए। अतः भोलानाथ वर्धमान से पहले अपने गाँव बंडूर गए। बड़ी अनुनय विनय के बाद अन्ततः माँ ने भोलानाथ को योगी जी के साथ जाने की स्वीकृति दे दी। वर्धमान लौटने पर भोलानाथ ने अपनी योजना अपने मित्र हरिपदो को बताई। हरिपदो भी आग्रहपूर्वक भोलानाथ के साथ चल पड़ा। दोनों मित्र ढाका पहुँचे तथा वे वहाँ पता करते-करते रमना के मैदान पहुँच गए। वहाँ महायोगी के दर्शन करके भोलानाथ ने उनसे प्रार्थना की कि अब की वे उन्हें अपने साथ अवश्य ले चलें। योगी जी ने कहा कि अपने साथ एक अन्य लड़के को भी क्यों ले आए हो? भोलानाथ ने कहा कि वह उनका घनिष्ठ मित्र हरिपदो है तथा वह भी योग मार्ग में

बढ़ने के लिए आतुर है। तब महायोगी ने कहा कि तुम लोग संध्या के बाद मेरे पास आना।

वस्तुतः ये महायोगी हिमालय के ज्ञानगंज आश्रम के स्वामी निमानन्द परमहंस थे। संध्या के बाद जब दोनों बालक महायोगी निमानन्द के पास आए तो उन्होंने दोनों बालकों को बताया कि उनके साथ बीहड़ तथा दुर्गम मार्गों से जाना होगा, तथा पर्वतों पर रहना होगा, परन्तु दोनों बालकों ने उसे सहर्ष स्वीकार कर लिया। निमानन्द जी ने दोनों बालकों की आँखों में पट्टियाँ बाँध दीं तथा रात्रि भर तीनों लोग यात्रा करते रहे। बालकों को केवल यह आभास हो रहा था कि वे मानो मखमल की कालीन पर चलते जा रहे हों। प्रातः ज़ब दोनों बालकों की आँखों की पट्टियों को खोला गया तो उन्होंने देखा कि वे एक मन्दिर पर खड़े हैं। मन्दिर के चारों ओर केवल पह़ाड़ियाँ-ही-पहाड़ियाँ हैं।

मन्दिर में कुछ दर्शनार्थी खड़े थे, परन्तु उनमें एक भी बंगाली नहीं दिखाई पड़ा। अतः भोलानाथ समझ गए कि बंगाल से कहीं बहुत दूर आ गये हैं। पूछने पर उन्हें ज्ञात हुआ कि यह उ०प्र० का मिर्जापुर जिला है तथा वे जिस मन्दिर में खड़े हैं, वह विन्ध्याचल देवी का सुप्रसिद्ध मन्दिर है। परमहंस निमानन्द उन बालकों से यह कहकर चले गये कि तुम दोनों यहाँ निश्चिन्त होकर रहो। कोई भी प्राणी तुम्हारा कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकता।

धीरे-धीरे मध्याह्न का समय आया। इतने में दोनों बालकों ने देखा कि एक श्याम वर्ण का ब्राह्मण आया तथा वह दोनों के खाने के लिए स्वादिष्ट प्रचुर सामग्री रख गया। दोनों ने आनन्द से भरपेट भोजन किया। वे परमहंस निमानन्द के बारे में सोच रहे थे, परंतु स्वामी जी जब संध्या तक न लौटे तो दोनों चिन्तित होने लगे तथा उन्हें भूख भी लगने लगी। कुछ समय बाद वही दोपहर वाला ब्राह्मण आया तथा पुनः पर्याप्त मात्रा में सुस्वादु भोजन रखकर चला गया। दोनों ने भरपेट भोजन किया तथा हिंसक जानवरों से सुरक्षा की दृष्टि से दोनों पेड़ पर चढ़ गए। उन्होंने अपनी धोती से अपने शरीर को पेड़ की शाखाओं से बाँध दिया तथा पेड़ पर ही रात्रि में सोये।

प्रातः वे दोनों अष्टभुजा मन्दिर चले गए। दोनों आपस में बातें करते रहे। दोपहर के समय पुनः भोजन आ गया। संध्या समय फिर भोजन पहुँच गया, परन्तु गुरुदेव के वापस न लौटने के कारण दोनों चिन्तित हो गए। जैसे-जैसे अँधेरा बढ़ने लगा वैसे-वैसे बच्चे भी चिन्तित होने लगे। पास में जब कहीं सिंह का दहाड़ना सुना तो दोनों बच्चे रोने लगे। कुछ समय बाद बच्चों ने देखा कि दूर से एक प्रकाश पुंज

तेजी से उड़ता हुआ चला आ रहा है। वह प्रकाश पुंज दोनों बालकों के पास आकर रुक गया तथा ज्ञानगंज आश्रम की माँ उमा भैरवी प्रकट हो गई। उनकी मुखाकृति सौम्य थी। ललाट पर सिन्दूर का तिलक लगाए हुए थीं तथा हाथ में त्रिशूल लिये हुए थीं। उनके गले में रुद्राक्ष की माला सुशोभित हो रही थी। उमा भैरवी ने कहा कि बेटों, तुम लोग मत रोओ। तुम जिन महासिद्ध योगी के साथ जा रहे हो, उनकी ऐसी योगशक्ति है कि तुम्हारा कोई कुछ भी अहित नहीं कर सकता। मैं तुम लोगों का रोना नहीं देख सकी। अतः मुझे आकाश मार्ग से तुम लोगों के पास आना पड़ा। वे महायोगी कुछ दिनों में तुम्हारे पास आ जाएँगे तथा तुम्हें अपने साथ ज्ञानगंज ले आएँगे। इसके बाद उन्होंने भोलानाथ को अपनी गोद में बिठाकर उनके पूरे शरीर में माँ की तरह हाथ फेरा। उन्होंने बालकों से कहा कि तुम लोग अब घबड़ाना मत। तुम लोग जब भी याद करोगे, मैं आ जाऊँगी। इतना कहकर सिद्ध भैरवी माँ उमा वहीं अन्तर्धान हो गई।

लगभग एक सप्ताह के बाद महायोगी निमानन्द लौटे। उन्होंने दोनों बच्चों की आँखों में पुनः पट्टी बाँध दी तथा उन्हें माँ विन्ध्याचल के मन्दिर से सोलह मील दूर पहाड़ियों के बीच बने एक आश्रम पर ले गए। वहाँ पर कुछ महात्मागण थे। उन महात्माओं के पास बच्चों को छोड़कर योगी निमानन्द फिर कहीं चले गये। बच्चों के भोजन तथा विश्राम की व्यवस्था आश्रम में हो गयी। महात्माओं के होने के कारण बच्चों का मन भी नहीं ऊबा। चार-पाँच दिन बाद स्वामी निमानन्द वापस आए। उन्होंने बच्चों के नेत्रों पर पुनः पट्टियाँ बाँध दीं तथा उन्हें तुकली पहाड़ी पर ले गए। यहाँ पर एक गुफा के भीतर श्यामा-भैरवी माता निवास कर रही थीं। यहाँ बच्चों को काफी अच्छा लगा। श्यामा भैरवी ने उन्हें माता जैसा प्यार दिया तथा उनके खाने की उत्तम व्यवस्था कर दी।

संध्या के समय महायोगी निमानन्द पुनः आ गए। उन्होंने दोनों बच्चों की आँखों में पट्टियाँ बाँध दीं। तीनों लोग पूरी रात्रि यात्रा करते रहे। यद्यपि मार्ग में कंकड़, पत्थर, भयानक चट्टानें तथा दुर्गम पर्वत श्रृंखलाएँ थीं, परन्तु निमानन्द जी बालकों को आकाश मार्ग से ले जा रहे थे, अतः उन्हें कोई कठिनाई नहीं थी। उन्हें ऐसा लग रहा था कि मानो वे मखमल की कालीन पर चल रहे हों। प्रातः होते-होते वे अपने गंतव्य पर पहुँच गए। स्वामी निमानन्द ने उनकी आँखों पर से पट्टियाँ खोलीं। बालकों ने देखा कि वे एक दिव्य आश्रम में खड़े हैं। उसके चारों ओर गगनचुम्बी पर्वतमालाएँ हैं। पर्वतखण्डों पर श्वेत बर्फ शोभायमान हो रही है। भोलानाथ ने महायोगी से पूछा कि यह कौन सा स्थान है। इस पर निमानन्द जी ने

बताया कि यह उत्तरापपथ में तिब्बती क्षेत्र में स्थित अति दुर्गम गुप्त योगाश्रम है, जिसे 'ज्ञानगंज योगाश्रम' के नाम से अभिहित किया जाता है।

यहाँ पर कई वर्षों तक रहकर भोलानाथ ने योग तथा विज्ञान की विविध शाखाओं में प्रवीणता प्राप्त की। यहाँ पर उनका नाम विशुद्धानन्द रखा गया। उन्होंने योग तथा विज्ञान की गहराइयों में इतने अधिक गोते लगाए थे कि योग तथा विज्ञान के बड़े-से-बड़े रहस्य उन्हें करतलगत हो गए। यहाँ पर अर्जित ज्ञान तथा साधना के कारण वे आगे चलकर एक महायोगी बने। वे विश्व विख्यात हैं। उनकी ये सारी उपलब्धियाँ उन्हें ज्ञानगंज में अर्जित विद्याओं तथा यहाँ अभ्यस्त किए गए आचरण के कारण ही प्राप्त हुई।

स्वामी निखिलेश्वरानन्द ने भी सिद्धाश्रम में रहकर ही अनेकानेक उत्कृष्ट विद्याओं का ज्ञानार्जन किया था। ज्योतिष, कर्मकाण्ड, तंत्र-मंत्र, विज्ञान तथा योग आदि के बारे में जो गूढ़ तथा व्यापक ज्ञान है, उसे इन्होंने यहाँ पर ही प्राप्त किया था। आज वे भारत के ही नहीं, अपितु विश्व के एक महान् तंत्र-मंत्र तथा कर्मकाण्डवेत्ता माने जाते हैं।

सिद्धाश्रम वस्तुतः धरती का सिद्धलोक है। उसमें भगवान् विष्णु, परमेश्वर शिव, चतुर्मुख, ब्रह्मा का आगमन होता रहता है। शताब्दियों से विश्व विख्यात विभूतियाँ- शंकराचार्य तथा गोरखनाथ वहाँ आने में आनंद का अनुभव करते हैं। जो भी साधक यहाँ पहुँच जाता है, उसका जीवन धन्य बन जाता है। वहाँ कुछ वर्षों तक निवास कर विविध प्रकार का ज्ञानार्जन कर लेने वाला मानव विश्व का प्रेरणास्रोत बन जाता है। धन्य है, उनका जीवन जिनके पुनीत चरण सिद्धाश्रम तक पहुँच सके हैं।

❑

महावतार बाबा

सहज समाधि, स्वरूपस्थिति, महात्याग, अनासक्त कर्मयोग, जन कल्याण, योग का प्रचार, महान् आध्यात्मिक शक्ति, लोक मंगल एवं लम्बी-लम्बी अवधि तक समाधि में लीन रहने वाले महाव्यक्तित्व का नाम है- महावतार बाबा। गिरिराज हिमालय के, वर्तमान काल के सर्वाधिक विश्वविख्यात महोयोगी हैं- महावतार बाबा। विश्व के अनेक देशों के युवक-युवतियाँ महावतार बाबा के नाम से सुपरिचित हैं। यूरोप तथा यू०एस०ए० के सैकड़ों योग साधक महावतार बाबा को पाने के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर सकते हैं।

महावतार बाबा अनासक्त कर्मयोग के मूर्त्त रूप हैं। उनका कोई भी कार्य अपने हित या स्वार्थ के लिए नहीं है। वे दूसरों की भलाई तथा लोगों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। वे यह भी नहीं चाहते कि उनको मान-सम्मान तथा प्रतिष्ठा मिले। बताते हैं कि वे हिमालय के एक स्थान पर एक दूसरे नाम से रह रहे थे। वहाँ रहकर उन्होंने लाखों लोगों के मन में योग तथा अध्यात्म के प्रति अभिरुचि जगाई। जब उनका सम्मान तथा ख्याति बहुत अधिक बढ़ने लगी तो उन्होंने एक दिन हमेशा के लिए उस स्थान का परित्याग कर दिया। लोग धन तथा यश पाने के लिए जीवन भर प्रयासरत रहते हैं। सम्पत्ति तथा सम्मान के लिए दूसरों को मृत्यु के घाट उतरवा देते हैं परन्तु उसी सम्मान तथा धन को महावतार बाबा ने तृण की तरह त्याग दिया।

यह विश्वसनीय रूप से कहा जा सकता है कि महावतार बाबा महाभारत के आचार्य कृप हैं- परन्तु महाभारत कालीन कृपाचार्य में तथा महावतार बाबा में आकाश-पाताल का अन्तर है। महाभारत के महाविनाशकारी युद्ध के बाद आचार्य कृप ने हिमालय जाकर इतना अधिक ध्यान किया है तथा इतनी अधिक समाधियाँ लगाई हैं कि अब मृत्यु उनकी अनुचरी है। बिना उनकी इच्छा के मृत्यु उन्हें मार नहीं सकती। प्रकृति उनके संकेत पर क्रियाशील हो जाती है।

महावतार बाबा मुख्यतः हिमालय में ही रहते हैं, परन्तु आचार्य वृत्ति होने के कारणं वे भारत में लगने वाले चार महाकुम्भ मेलों में भी आते-जाते रहते हैं। भारत के सुप्रसिद्ध तीर्थों में भी उनका शुभागमन होता रहता है। वे इनके आसपास आवश्यकतानुसार अवस्थान भी करते हैं। उन्नत साधकों को भी वे अपना मार्ग-दर्शन प्रदान करते रहते हैं। जो साधक पूर्व जन्म में पर्याप्त साधना कर चुके हैं परन्तु किसी कारणवश उन्हें पुनः संसार में जन्म लेना पड़ गया है तथा पूर्व जन्म में वे

महावतार बाबा के किसी प्रकार के सम्पर्क में थे, उनको साधनामार्ग में पुनः अग्रसर कराने की ओर वे विशेष प्रयास करते हैं। ऐसे योगी, जिनके द्वारा समाज के एक बड़े वर्ग का कल्याण होना है, उनको आगे बढ़ाने के लिए महावतार बाबा विशेष प्रयत्नशील रहते हैं।

उनके ही आशीर्वाद एवं मार्गदर्शन से एक सामान्य व्यक्ति लाहिड़ी महाशय योगिराज बन गए। उनमें मुर्दे को जीवित करने की शक्ति आ गई। छोटे से आफिस में काम करने वाले लाहिड़ी विश्वविख्यात हो गए। आज लाखों लोग उनके नाम से सुपरिचित हैं।

महावतार बाबा अनेक मुर्दों को जीवित कर सकते हैं। वे सशरीर आकाश में बड़ी आसानी से उड़ सकते हैं। अपने शरीर को एक स्थान में विलय करके हजारों मील दूर पुनः बड़ी आसानी से दूसरे शरीर का निर्माण कर सकते हैं।

बताते हैं, एक बार महावतार बाबा हिमालय के किसी शिखर पर अपनी शिष्य मंडली के साथ बैठे हुए थे। एक नव-युवक उन्हें खोजते हुए उस शिखर पर जा पहुँचा। उसने महावतार बाबा से कहा कि मैं आपको बहुत समय से खोज रहा हूँ। आप कृपा करके मुझे अपना शिष्य बना लें। यदि आप मुझे अपना शिष्य नहीं बनाते हैं तो मैं अपनी जान दे दूँगा। जब महावतार बाबा ने उसे दीक्षा नहीं दी तो वह उस शिखर से नीचे कूद गया। शिखर अत्यन्त ऊँचा था, अतः उसका प्राणान्त हो गया तथा उसका शरीर क्षत-विक्षत हो गया। महावतार बाबा ने अपने पास बैठे हुए शिष्यों से कहा कि वे उस के क्षत-विक्षत शरीर को उठा लायें। बाबा ने उसके शरीर का स्पर्श किया तथा वह नवयुवक जीवित हो गया। इसके बाद बाबा ने उसे दीक्षा दे दी।

अभी मार्च-१६६६ में पता चला कि महावतार बाबा उ०प्र० तथा म०प्र० की सीमा के पास एक पहाड़ी स्थान पर गुप्त रूप से आए हुए हैं। उस स्थान से तीर्थराज प्रयाग, काशी, विन्ध्याचल देवी तथा मैहर देवी सभी नजदीक पड़ते हैं। उन दिनों हमारा नव दुर्गा का व्रत चल रहा था, अतः हम लोगों ने यह निश्चय किया कि नव दुर्गा के बाद रविवार के दिन हम लोग वहाँ चलेंगे।

जब हम लोग रविवार के दिन वहाँ पहुँचे तो पता चला कि बाबा जी वहाँ वस्तुतः आए हुए थे तथा दो दिन पहले वहाँ से गए हुए हैं।

वहाँ के लोगों को यह नहीं मालूम था कि वे महावतार बाबा हैं परन्तु उनके हृदयों में उनके प्रति अटूट श्रद्धा, भक्ति तथा आस्था थी। जो कुछ लोग उनके निकट सम्पर्क में रहे थे, वे उनसे अत्यन्त प्रभावित थे। वे उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे थे।

एक व्यक्ति ने बताया कि एक दिन वह पहाड़ों के ऊपर काम कर रहा था। उसके मन में बड़ी उत्कट इच्छा जगी कि बाबा जी का दर्शन बहुत दिन से नहीं हुआ है। उनका किसी प्रकार दर्शन हो जाता तो नेत्र सफल हो जाते। इतने में उसने अचानक देखा कि बाबा जी उसके सामने एकाएक प्रकट हो गये। उस व्यक्ति ने बाबा जी से कहा कि आप किस तरफ से आए। बाबा जी ने कहा कि सामने से आया हूँ। उस व्यक्ति ने कहा कि आप सामने से या किसी ओर से आते हुए मुझे दिखाई नहीं पड़े, फिर आप यहाँ कैसे आए। इस पर बाबा जी उस व्यक्ति से बोले कि तुम अपना काम करो।

थोड़ी देर बाद बाबा जी वहाँ से चलने लगे। उस व्यक्ति ने कहा कि आप यहाँ से कैसे जायेंगे? चलें, आपको सड़क पर पहुँचाकर किसी सवारी पर बिठा दें। सड़क पर पहुँचकर बाबा जी ने उस व्यक्ति से कहा कि अब हम चले जायेंगे, तुम जाओ, परन्तु उस व्यक्ति ने बाबा जी को बिना किसी सवारी पर बिठाये वापस जाना उचित नहीं समझा, अतः वह वहाँ खड़ा ही रहा। थोड़ी देर बाद वहाँ से एक ट्रक निकला। उस व्यक्ति ने ट्रक ड्राइवर को ट्रक रोकने का हाथ दिया परन्तु ड्राइवर ने ट्रक नहीं रोका तथा उसे लेकर चला गया। बाबा जी ने उस व्यक्ति से कहा कि तुम जाओ, हम यहाँ से चले जायेंगे। उस व्यक्ति ने कहा कि आप किस प्रकार से जायेंगे। इस पर बाबा जी ने कहा कि इसी ट्रक से चले जायेंगे। उस व्यक्ति ने कहा कि यह ट्रक तो चला गया, इससे आप किस प्रकार जायेंगे? बाबा जी ने कहा कि ट्रक अभी गया कहाँ? वह देखो खड़ा है। उस व्यक्ति ने देखा कि बाबा जी के इतना कहते ही वह ट्रक जहाँ था, वहीं सड़क पर खड़ा हो गया। वह व्यक्ति बाबा जी के साथ उस ट्रक की ओर चल पड़ा। ट्रक के पास जाकर उसने देखा कि ड्राइवर बार-बार ट्रक को स्टार्ट करने के लिए चाभी लगा रहा है परन्तु ट्रक स्टार्ट नहीं हो रहा है। वह व्यक्ति बाबा जी के साथ ट्रक के पास पहुँचा। उसने ट्रक ड्राइवर से कहा कि बाबा जी को ट्रक में बिठा लो। बाबा जी जैसे ही ट्रक में बैठे, ट्रक स्टार्ट हो गया।

वर्तमान स्थल पर बाबा जी जब पहले दिन आए तो उन्होंने एक पण्डित जी से कहा कि मुझे थोड़ा सा आटा दे दो, हम बाटी बनाएँगे। वह व्यक्ति बाबा जी के बारे में नहीं जानता था, अतः अन्यमनस्क होकर उन्हें थोड़ा सा आटा दे दिया। उस आटे से तीन बाटियाँ बनकर तैयार हुई। जब बाबा जी के पास एक व्यक्ति आया तो उन्होंने उससे कहा कि लो प्रसाद खाओ। यह कहकर उन्होंने उसे दो बाटियाँ दे दीं। इसी प्रकार से एक-एक करके आठ व्यक्ति आए तथा आठ लोगों को बाबा जी ने दो-दो बाटियाँ दी। सभी लोग आनन्द से बाटी खाकर चले गए।

इसके बाद एक आदमी ने कहा कि बाटी तो हम लोगों ने खा ली परन्तु जरा यह सोचो कि बाबा जी ने बाटी तो केवल तीन बनायी थी। उन्होंने दो-दो करके आठ लोगों को बाटियाँ दीं। इस प्रकार से इन बाटियों की संख्या ही सोलह हो गई। अब इन लोगों को लगा कि ये बाबा जी कोई मामूली बाबा नहीं हैं, इनमें कोई विलक्षण शक्ति प्रतीत होती है।

अन्य कई लोगों ने बताया कि बाबा जी एक अति पुरानी टूटी साइकिल लिये रहते हैं। वे जब, जहाँ, जिस व्यक्ति से मिलने को कहते हैं, वहीं प्रकट हो जाते हैं। गाँव के अन्दर वे साइकिल लिये दिखाई पड़ते हैं परन्तु दृष्टि के सामने ही एकाएक साइकिल सहित अन्तर्धान हो जाते हैं। चाहे कई सौ किलोमीटर की यात्रा हो, वे भक्तों से कह देते हैं कि तुम चलो, हम साइकिल से आते हैं। भक्त लोग बस या ट्रेन से जब गंतव्य स्थान पर पहुँचते हैं तो वे पाते हैं कि बाबा जी वहाँ पहले से ही पहुँच चुके हैं। जब कोई अनन्य भक्त बहुत अधिक उनसे अनुरोध करता है, तभी वे किसी वाहन पर बैठते हैं।

उनके एक अंतरंग भक्त ने साधना की एक रुचिकर बात बताई। वे भक्त उस समय देवी की उपासना कर रहे थे। उन्होंने एक दिन संकल्प कर लिया कि जब तक देवी जी दर्शन नहीं देंगी, तब तक वे अपनी अँगुली चीर कर उससे अग्नि में रक्त की आहुति देते रहेंगे। उन्होंने एक दिन अचानक देखा कि एक असाधारण युवती सामने अचानक प्रकट हो गई। वह सफेद पैंट तथा शर्ट पहने हुए थी। उसका सफेद पैंट इतना चमक रहा था, मानो पिघली हुई चाँदी हो। उसका मुख मंडल बिल्कुल काला था तथा हाथ बिल्कुल सफेद। जब साधक ने उसकी आँखों की ओर देखा तो उसे उसकी आँखें इतनी बड़ी दिखाई पड़ीं कि मानो भभकते हुए आग के दो बड़े-बड़े गोले हों। साधक ने तुरन्त अपने हाथ जोड़ लिये तथा क्षमा करने की प्रार्थना की। इसके बाद उस युवती ने कहा कि मुझे खाना खिलाओ। साधक ने खाना बनाने वाले से कहा कि इन्हें खाना खिलाओ। जब रसोइया खाना खिला रहा था, तब उसे उस युवती के विकराल बड़े-बड़े दाँत तथा भभकंती हुई बड़ी विकराल आँखें दिखाई पड़ीं। युवती के रूप में आई हुई उस देवी का वह विकट रूप देखकर रसोइये के मुख से चीख निकल गई। चीख सुनकर साधक जी वहाँ दौड़कर आ गए। युवती की आँखें तथा दाँत पुनः सामान्य हो गए। भोजन करके वह युवती साधक जी के कमरे में आई तथा साधक के देखते-देखते ही वहीं अन्तर्धान हो गई।

बाबा जी उस समय वहाँ नहीं थे। जब एक दिन वे वहाँ अचानक आए तो उन्होंने साधक को डाँटते हुए कहा कि देवियों के दर्शन के लिए इस प्रकार से ज़िद नहीं करनी चाहिए।

❑

ब्रह्मर्षि सर्वेश्वरानन्द

ब्रह्मर्षि-योगिराज सर्वेश्वरानन्द एक दिव्य सत्ता हैं। प्रकृति के सूक्ष्म तत्त्वों पर उनका अधिकार है। वे जब चाहते हैं तब सूक्ष्म शरीर धारण कर लेते हैं तथा जब चाहते हैं तब स्थूल शरीरी हो जाते हैं। कुछ योगी उन्हें दीर्घजीवी सन्त मानते हैं तथा उनकी आयु लगभग सात सौ वर्ष आँकते हैं। वे कुछ ही क्षणों में देश के एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँच जाते हैं। वे सशरीर आकाश में उड़ सकते हैं। जन्म तथा मृत्यु पर उन्होंने अधिकार पा लिया है।

वे ज्यादा करके हिमालय में ही रहते हैं। हिमालय का नन्दन वन उनका अभीष्ट स्थान है। हिमालय की दिव्य सत्ताओं तथा सूक्ष्म देहधारी ऋषि-मुनियों से उनका सम्पर्क है। उन्हें भीड़ पसन्द नहीं है। वे एकान्तवास तथा निर्जन स्थलों में रहना पसन्द करते हैं।

मानव के मंगल तथा जन कल्याण में उनकी रुचि है तथा उच्च कोटि के साधकों तथा मनीषियों को मार्गदर्शन देकर वे उन्हें जनकल्याण के कार्यों के लिए प्रेरित करते रहते हैं। युगपुरुष आचार्य श्रीराम शर्मा को उन्होंने ही प्रेरित किया तथा उनके माध्यम मे योगिराज ने एक शान्तिपूर्ण धार्मिक तथा सामाजिक क्रान्ति भारत में सम्पन्न करवायी। महायोगी पायलट बाबा को उन्होंने कई बार दर्शन दिये। घनश्यामदास विरला को भी दर्शन देकर उन्होंने कृतार्थ किया था। हिमालय के अन्य उच्चकोटि के साधकों को भी वे दर्शन देते रहते हैं। बताते हैं कि स्वामी रामतीर्थ को समाधि लगाना उन्होंने ही सिखाया था।

नन्दन वन उत्तराखण्ड क्षेत्र में स्थित है। उत्तराखण्ड योगियों, सिद्धों तत्त्ववेत्ताओं, सूक्ष्म सत्ताओं, ज्ञानियों एवं दिव्य सत्ताओं की निवास भूमि है। इसी क्षेत्र में तिब्बत की ओर बहुचर्चित ज्ञानगंज सिद्धाश्रम स्थित है। श्रीमद्भागवत में यहाँ सिद्ध योगियों का निवास स्थल माना गया है। थियोसाफी की संस्थापिका मैडम ब्लैवट्स्की ने इसे सिद्धों की पार्लियामेंट कहा है। 'आटोबाएग्राफी आफ ए योगी', 'लिविंग विद द हिमालयन मास्टर्स', 'ए सर्च इन सीक्रेट इंडिया', 'हिमालय कह रहा है', 'भारत के महान् साधक' आदि पुस्तकों से इस क्षेत्र में रहने वाले महासिद्धों के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। अध्यात्म तत्त्ववेत्ताओं के अनुसार दैवी चेतन सत्ता इन्हीं महासिद्धों के माध्यम से पृथ्वी पर अपना सूत्र संचालन करती

है। समाज में कार्यरत श्रेष्ठ मानवों तथा उच्च साधकों के माध्यम से हिमालय के ये महामनीषी भारत भूमि में अध्यात्म का प्रचार करवाते हैं।

पाण्डवों ने जहाँ से स्वर्गारोहण किया था, वह पर्वत श्रृंखला स्वर्गारोहिणी नाम से बद्रीनाथ-केदारनाथ के मध्य विद्यमान है। यहीं पर व्यासगुफा है, जो वसुन्धरा के पास स्थित है। यहीं पर पुराण लिखे गये थे तथा वेदों का चार भागों में विभाजन किया गया था। नन्दन वन, शिवलिंग, सुमेरु, चौखम्भा शिखरों के पृष्ठ भाग में अभी भी महासिद्ध ऋषि-मुनि विद्यमान हैं। दिव्य सद्पुरुषों के अनुसार ब्रह्माण्ड की सघन अध्यात्म चेतना का धरती पर विशिष्ट अवतरण इस क्षेत्र की भू-चुम्बकीय तथा आध्यात्मिक विशेषताओं के कारण इसी क्षेत्र में होता है। पौराणिक कथानकों के अनुसार राजा दशरथ को इन्द्र द्वारा सहायता के लिए बुलाया जाना, अर्जुन का स्वर्गलोक जाना, दधीचि द्वारा सहायता के लिए अस्थियों का दान, सुकन्या के आह्वान पर अश्विनीकुमारों का नेत्रदृष्टि प्रदान करना तथा उन्हें युवा बना देना आदि ऐसी बाते हैं, जो सिद्ध करती हैं कि स्वर्ग वहीं कहीं पृथ्वी के निकट ही होना चाहिए, जिसका रास्ता उत्तराखण्ड से होकर है।

योगिराज सर्वेश्वरानन्द युगपुरुष श्रीराम शर्मा के गुरु हैं। जब आचार्य श्री की आयु मात्र १५ वर्ष ३ माह थी, उनके पूजागृह में अकस्मात् एक प्रकाशपुंज प्रकट हुआ। वसंतपर्व के दिन ब्राह्म मुहूर्त में प्रकटे उस प्रकाश से पूजागृह का सारा कमरा जगमगा उठा। प्रकाश के मध्य एक महायोगी का छाया शरीर उभरा। इस महायोगी ने कहा कि देव पुरुष जिसके साथ सम्वन्ध स्थापित करते हैं, इसे वे पहले अच्छी तरह परखते हैं। समय की विषमताओं के मिटाने के लिए हम तुम्हारा प्रयोग करेंगे। देखने में तुम्हारा जीवन सामान्य सा होगा परन्तु तुम्हारा कृतित्व असाधारण होगा। तुमसे सीमित आयु में ही हम कई सौ वर्षों का काम करा लेंगे। तुम्हें जो कार्य करना है उसके लिए आत्मबल तथा मनोबल जुटाने हेतु तप की आवश्यकता है। उस दिन महायोगी ने भावी जीवन की रूपरेखा पर भी प्रकाश डाला था। उन्होंने बताया था कि गायत्री महाशक्ति के २४ वर्षों में २४ महापुरश्चरण करने होंगे। अखण्ड घृतदीप की स्थापना करनी होगी। मार्ग दर्शन के लिए चार बार हिमालय जाना होगा। ब्रह्मर्षि सर्वेश्वरानन्द द्वारा प्रथम बार हिमालय बुलाये जाने पर आचार्य श्रीराम शर्मा मार्ग में बड़े कष्ट सहते हुए हिमालय स्थित नन्दन वन पहुँचे। वहाँ का दृश्य वड़ा मनोहारी था। रात्रि निवास के लिए वे वहाँ स्थित एक गुफा में गये।

रात्रि में चन्द्रमा का स्वर्णिम प्रकाश सम्पूर्ण हिमालय को आच्छादित किये हुए था। देखने में ऐसा लग रहा था कि मानो हिमालय सोने का है। रात्रि में गिरते हुए वर्फ कण ऐसे प्रतीत हो रहे थे, मानो स्वर्ण बरस रहा हो। रात्रि में सर्वेश्वरानन्द जी का गुफा में पदार्पण हुआ। इसके बाद दोनों लोग गुफा के बाहर निकले । सर्वेश्वरानन्द के पैर जमीन से ऊपर उठते हुए चल रहे थे। श्रीराम शर्मा गुरुदेव के पीछे-पीछे दुम की भाँति चल रहे थे। आज की यात्रा का उद्‌देश्य पुरातन ऋषियों की तपस्थली का दर्शन कराना था। स्थूल शरीरों का सभी ने परित्याग कर दिया था, परन्तु सूक्ष्म शरीर सभी के विद्यमान थे। सूक्ष्म शरीरों को भेदकर कुछ के कारण शरीर झलक रहे थे। आचार्य जी ने उन्हें करबद्ध प्रणाम किया। जो बड़ी-बड़ी साफ सुथरी गुफाएँ थीं, उनमें ये ऋषिगण, पहले से लगाव होने के कारण यदा-कदा आते रहते हैं। वे सूक्ष्म शरीरों से इनमें निवास करते हैं।

वे सभी सूक्ष्म शरीरधारी ऋषिगण उस समय ध्यान मुद्रा में थे। सर्वेश्वरानन्द जी ने बताया कि वे प्रायः इसी मुद्रा में रहते हैं। सर्वेश्वरानन्द जी ने एक-एक महात्मा का नाम बताकर उनका परिचय कराया। सर्वेश्वरानन्द जी के साथ श्रीराम शर्मा के आगमन की बात उन ब्रह्मर्षियों को पहले से ही मालूम थी, अतः ये दोनों लोग जिन-जिन देवर्षियों के पास गये, इनके पहुँचने पर उनके नेत्र खुल गये। मुखमंडल पर हल्की सी मुस्कान दृष्टिगोचर हुई तथा शिर थोड़ा-थोड़ा झुक गए, जिससे प्रकट हुआ कि वे प्रणाम का उत्तर दे रहे हैं। कोई कुछ भी बोला नहीं आज मात्र दर्शन होने थे। रात्रि में दर्शन कराने के बाद सर्वेश्वरानन्द श्रीराम शर्मा की स्थूल काया को नियत गुफा में छोड़कर चले गये। दूसरे दिन सर्वेश्वरानन्द जी सशरीर गुफा में उपस्थित हुए। उनका शरीर वैसा ही था, जैसा आचार्य श्रीराम शर्मा ने १५ वर्ष की आयु के बाद पूजागृह में देखा था। उन्होंने शर्मा जी को विस्तार से बताया कि उन्हें २४ वर्षों में गायत्री के २४ महापुरश्चरण पूरे करने होंगे। सर्वसुलभ साहित्य उपलब्ध कराने के लिए आर्ष ग्रन्थों का हिन्दी में अनुवाद करना होगा। इसमें चारों वेद, १०८ उपनिषद्, २४ स्मृतियाँ आदि सम्मिलित होंगी। स्वतंत्रता संग्राम में योगदान देना होगा। उन्होंने यह भी बताया कि साहित्य प्रकाशन का कार्य मथुरा में रहकर करना होगा। गुरुदेव ने कहा कि इन्द्रियनिग्रह, अर्थनिग्रह, समयनिग्रह तथा विचारनिग्रह इन चार संयमों का पालन करने वाला व्यक्ति महामानव बन जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह— इन चारों से मन को उबार लेने पर लौकिक सिद्धियाँ हस्तगत हो जाती हैं। वार्ता की समाप्ति पर गुरुदेव ने कहा कि अब तुम गंगोत्री चले जाओ।। वहाँ तुम्हारे निवास, आहार आदि की व्यवस्था हमने कर दी है। भागीरथशिला-गौरीकुण्ड पर बैठकर अपनी साधना आरम्भ

करो। एक साल हो जाय, तब अपने घर लौट जाना। हम तुम्हारी नियमित रूप से देखभाल करते रहेंगे। प्रथम बार हिमालय बुलाए जाने के दस वर्ष व्यतीत हो गए तथा आचार्य श्री गुरुदेव द्वारा निर्दिष्ट साधना को नियमित रूप से सम्पन्न करते रहे। अब हिमालय आने का गुरुदेव का पुनः आदेश हुआ। आचार्य श्री ने दूसरे ही दिन चलने की तैयारी कर दी। वे गंगोत्री होते हुए गोमुख जा पहुँचे । यहाँ से योगिराज सर्वेश्वरानन्द के सूक्ष्म शरीरधारी सन्देशवाहक ने अपेक्षाकृत कम समय में उन्हें सरलता से नन्दनवन पहुँचा दिया। रास्ते में दोनों बराबर मौन ही रहे।

नन्दन वन पहुँचने पर शर्मा जी को सर्वेश्वरानन्द जी के सूक्ष्म शरीर में दर्शन हुए। उनका दर्शन पाकर आचार्य जी गद्‌गद् हो गये। उनकी सारी थकान मिट गयी। जब सर्वेश्वरानन्द जी ने अपना हाथ उनके सिर पर रख दिया तो वे कृतकृत्य हो गए।

सतयुग से प्रायः सभी ऋषि उसी दुर्गम क्षेत्र में निवास करते आए हैं, जहाँ आचार्य श्री ने प्रथम बार उनका दर्शन किया था। स्थान नियत करने के लिए तथा आपस में मिलने-जुलने के लिए प्रायः सभी ने अपने अपने लिए एक गुफा नियत कर ली है। आचार्य जी प्रथम साक्षात्कार में उन सूक्ष्म शरीरधारी ब्रह्मर्षियों का केवल दर्शन भर कर पाए थे । अब दूसरी यात्रा में सर्वेश्वरानन्द उन्हें उन महर्षियों के पृथक्-पृथक् दर्शन कराने ले गये। देखने में वे हलके प्रकाशपुंज की तरह दिखते थे, लेकिन जब अपना सूक्ष्म शरीर सही हो गया तो उन ब्रह्मर्षियों के सतयुग वाले शरीर भी दिखने लगे। शर्मा जी ने अपना शिर उनके पैरों पर रख दिया तथा उन्होंने आशीर्वादसूचक अपना हाथ उनके शिर पर रखा।

सूक्ष्म शरीरधारी उन महात्माओं ने कहा कि हम स्थूल शरीर से जो गतिविधियाँ चलाते थे, वे अब बिल्कुल समाप्त हो चुकी हैं। विदाई देते समय उनकी आँखें डबडबाई-सी दिखाई पड़ीं। उन सबका मन भारी देखकर सर्वेश्वरानन्द जी तथा शर्मा जी की आँखें भी डबडबा आईं। दूसरे दिन लौटने पर ऋषियों की व्यथा वाली बातें शर्मा जी के मन में बराबर गूँजती रहीं।

सर्वेश्वरानन्द जी ने कहा कि चलो, उन ऋषियों से मिलने हम दुबारा चलते हैं तथा उनको हम वचन देंगे कि उनकी गतिविधियों का बीजारोपण करने के लिए हम उद्यम करेंगे। वे कृपया अपने आशीर्वाद से उसे बढ़ोत्तरी दें। ऐसा निश्चय करके ये दोनों लोग उन ऋषि सत्ताओं से मिलने दुबारा गए। सर्वेश्वरानन्द जी ने परा वाणी में कह सुनाया कि यह जो कहेगा, उसे करेगा। आप लोग कृपया यह बताएँ कि आपका जो कार्य छूटा हुआ है, उसका अब नये तरीके से बीजारोपण कैसे हो। यदि आप एवं हमलोग खाद पानी देते रहेंगे तो इसका उठाया हुआ कदम

खाली नहीं जाएगा। सब ने मिलकर यह निश्चय किया कि बीज एक खेत में बोया जाए तथा पौधशाला में पौध तैयार की जाए, उसके पौधे सब जगंह लगेंगे तथा खेत लहलहाने लगेगा। अब उन सभी ब्रह्मर्षियों के मुख प्रसन्न थे।

इसके बाद शर्मा जी एक दिन उस गुफा में और रुके। गुरुदेव ने नैतिक, बौद्धिक तथा सामाजिक क्रान्ति के लिए अपना गाँव छोड़कर आचार्य जी को मथुरा जाने का निर्देश दिया तथा वहाँ से एक मासिक पत्रिका अखण्ड ज्योति निकालने का आदेश दिया। आचार्य शर्मा को गुरुदेव ने मथुरा में गायत्री मन्दिर का निर्माण, सहस्त्र कुण्डी यज्ञ का अनुष्ठान आदि कई कार्य बताए। सर्वेश्वरानन्द जी ने कहा कि साधनों की चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है, जो तुम्हारे पास है, उसे बोओ। फसल सौ गुनी होकर पक जाएगी। जो काम सौंपे गये हैं, उन सभी के पूरा होने का सुयोग बन जाएगा। शर्मा जी को इस बार केवल ६ मास तक ही हिमालय में अवस्थान करने का निर्देश हुआ तथा महायोगी की ओर से उस सबकी व्यवस्था कर दी गयी। योगिराज के सूक्ष्म शरीरी बीरभद्र ने शर्मा जी को गोमुख तक पहुँचा दिया। ६ महीने की साधना करके वे अपने गाँव लौट आए। अब की बार उनका स्वास्थ्य और भी अच्छा हो गया।

मथुरा का कार्य सुचारु रूप से सम्पम्न करने के लिए अब हिमालय से गुरुदेव का तीसरा बुलावा आया। शर्मा जी ने हिमालय के लिए निर्धारित समय पर प्रस्थान कर दिया। गोमुख के आगे योगिराज के बीरभद्र छाया पुरुष ने आसानी से शर्मा जी को नन्दन वन पहुचा दिया। गुरुदेव का दर्शन करके आचार्य श्री की थकान मिट गई तथा मन में परम उल्लास का उदय हुआ। अभिवादन-आशीर्वाद के बाद योगिराज ने कहा कि अब तुम्हें मथुरा के स्थान पर हरिद्वार को अपनी कार्यस्थली बनाना होगा। वहाँ रहकर ऋषि परम्परा को पुनर्जीवित करने का कार्य करना है। तुमने अपनी पिछली हिमालय यात्रा के समय सूक्ष्म शरीरी ऋषियों को लुप्तप्राय परम्पराओं को जीवित करने के लिए जो वचन दिया था, उसे पूरा करना होगा। इस कार्य को सभी ऋषियों का कार्य समझना। इस बार हिमालय में रहने का मात्र ६ माह का ही निर्देश हुआ। निवास आदि की सारी व्यवस्था कर दी गई। ६ माह की साधना पूरी करने के बाद आचार्य जी मथुरा वापस लौट आए तथा मथुरा से वे हरिद्वार चले गए तथा वे ऋषियों को अपने द्वारा दिए गए वचन को पूरा करने में लग गए।

जिन ब्रह्मर्षियों, महर्षियों तथा राज़र्षियों ने हिमालय क्षेत्र में रहकर कभी कार्य किया था, उनका स्मरण योगिराज सर्वेश्वरानन्द ने आचार्य शर्मा को तीसरी यात्रा के समय दिलाया था। इन महाविभूतियों में भगीरथ गंगोत्री से, परशुराम यमुनोत्री

से, चरक केदारनाथ से, व्यास बद्रीनाथ से, याज्ञवल्क्य त्रियुगी नारायण से, नारद गुप्तकाशी से, आचार्य शंकर ज्योतिर्मठ से, जमदग्नि उत्तरकाशी से, पतञ्जलि रुद्रप्रयाग से, पिप्पलाद, सूत-शौनक, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न ऋषिकेश से, दक्ष प्रजापति सहित कणाद एवं विश्वामित्र सहित सप्तर्षि हरिद्वार से सम्बन्धित थे।

भगीरथ नें जल दुर्भिक्ष के निवारण के लिए कठोर तप करके गंगा का स्वर्ग से पृथ्वी पर अवतरण सम्भव किया, इसीलिए गंगा जी भागीरथी कहलायीं। चरक मुनि ने केदारनाथ क्षेत्र के दुर्गम क्षेत्रों में वनौषधियों का अनुसंधान एवं शोध करके रोग निवारण के लिए संजीवनी खोजी।

पतञ्जलि ने रुद्रप्रयाग में अलकन्दा एवं मन्दाकिनी के संगम स्थल पर योग के अनेक प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि मानव काया में दिव्य शक्तियाँ छिपी हुई हैं। याज्ञवल्क्य ने त्रियुगी नारायण में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का आविष्कार किया था। उन्होंने दिखाया था कि मानव के स्वास्थ्य, वातावरण की शुद्धि, वनस्पति संवर्धन एवं वर्षा आदि के लिए यज्ञ कितने उपयोगी हैं।

विश्वामित्र गायत्री मंत्र के द्रष्टा एवं नूतन सृष्टि के स्रष्टा माने गये हैं। उन्होंने सप्तर्षियों सहित तप करके आद्यशक्ति का साक्षात्कार किया था। उसी पावन भूमि पर इस समय शान्तिकुंज स्थापित है।

जमदग्नि का गुरुकुल आरण्यक उत्तर काशी में स्थित था एवं बालकों तथा वानप्रस्थों की शिक्षा का केन्द्र था।

नारद ने गुप्तकाशी में साधना की थी। वे वीणावादन एवं सत्परामर्श के माध्यम से भगवद्भक्ति का प्रचार करते थे।

देवप्रयाग में राम को योगवाशिष्ठ का उपदेश देने वाले वशिष्ठ धर्म एवं राजनीति का समन्वय करके चलते थे।

शंकराचार्य ने ज्योतिर्मठ में तप किया था तथा देश के चार कोनों में चार मठों की स्थापना की थी। विभिन्न साधना प्रणालियों को परम पद से जोड़ने का कार्य वे जीवनपर्यन्त करते रहे।

ऋषि पिप्पलाद ने ऋषिकेश के समीप अन्न के मन पर प्रभाव का अनुसंधान किया था। उन्होंने पीपल के फलों को खाकर आत्मसंयम द्वारा ऋषित्व को प्राप्त किया था।

हर की पौड़ी हरिद्वार में सर्वमेध यज्ञ में हर्ष वर्धन ने अपनी सारी सम्पदा तक्षशिला विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु दे दी थी।

कणाद ऋषि ने अथर्ववेदीय शोध परम्परा के अन्तर्गत अणुविज्ञान का अनुसंधान किया था। चौथी बार आचार्य जी को सर्वेश्वरानन्द जी ने हिमालय बुलाया। अब की बार मात्र एक सप्ताह के लिए ही उन्हें बुलाया गया था। इस बार सूक्ष्म शरीर से बुलाया गया था। वे नन्दन वन में पहुँच गए, जो मखमली गलीचा की भाँति मनमोहक था। गुरुदेव ने कहा कि तुम जो अगला कार्य शुरू करोगे, उसे तुम्हारे अनुवर्ती लोग आगे आसानी से करते रहेंगे। जो प्रथम अपने पग बढ़ाता है, उसे श्रेय मिलता है। पीछे वाले तो उसे सहज तरीके से करते रहते हैं, जैसे सौर मंडल के ग्रह नक्षत्र अपनी अपनी कक्षा में बिना किसी कठिनाई के घूमते रहते हैं।

गुरुदेव ने कहा कि अब तुम अपने को एक से पाँच बना लो। इसे सूक्ष्मीकरण कहते हैं। पाँच सूक्ष्म शरीर रहेंगे, क्योंकि व्यापक क्षेत्र को सम्भालना सूक्ष्म सत्ता से ही सम्भव हो पाता है। जब तक पाँचों सशक्त होकर अपना कार्य न संभाल लें, तब तक इस शरीर से उनका पोषण करते रहो। जब वे समर्थ हो जाएँ तो उन्हें अपना काम करने के लिए मुक्त कर देना। समय आने पर तुम अपने दृश्यमान सूक्ष्म शरीर का त्याग कर देना।

इस बार आचार्य जी को अधिक समय तक हिमालय में नहीं रोका गया। गुरुदेव ने कहा कि अब हमारी ऊर्जा सदैव तुम्हारे साथ रहेगी । अब हम एवं अन्य ऋषिगण आवश्यकतानुसार तुम्हारे साथ सदैव रहेंगे। तुम्हें आत्मिक ऊर्जा का अभाव नहीं रहेगा। वस्तुतः यह पाँच गुनी और अधिक बढ़ जाएगी। इसके पश्चात् गुरुदेव का आशीर्वाद लेकर आचार्य जी हरिद्वार में शान्तिकुंज वापस लौट आए तथा सूक्ष्मीकरण क्रिया प्रारम्भ कर दी।

पायलेट बाबा ने कई बार योगिराज सर्वेश्वरानन्द का दर्शन तथा सानिध्य लाभ प्राप्त किया है। पायलेट बाबा के ही शब्दों में सर्वेश्वरानन्द जी हिमालय के गाँवों में भ्रमण करते रहते हैं। वे यदा-कदा अनाज भी खा लेते हैं। अपने हाथ से पकाते हैं। अग्नि को पानी से अभिमंत्रित कर गायत्री मंत्र से पैदा करते हैं। उन्होंने हमें अनेक बार संरक्षण दिया है। हिमालय में मैं जब भी लम्बी समाधि में बैठना चाहता हूँ, वे सानिध्य देने अवश्य आ जाते हैं।

वे देहरादून और हिमाचल प्रदेश में बाबा रामदास के नाम से बड़े चर्चित हैं। प्रमोदवन, बड़ी कुटिया, अयोध्या में भी ये आते-जाते हैं। रामपुर के पास नया गाँव थरवाई में ये शिव मन्दिर में महीनों रह चुके हैं। सर्वेश्वरानन्द जी चना और शहद बहुत पसन्द करते हैं और बड़े प्रेम से खाते हैं। वे सशरीर आकाश में तैर जाते हैं। कभी शरीर का विलय कर उसे पुनः प्रकट कर देते हैं। उनकी

विचार-तरंगों का रूप अखण्ड ज्योति है, जो प्रकाश का द्योतक है। प्रकाश आत्मा का प्रतीक है। आत्मा की प्राप्ति मनुष्य का धर्म है तभी आदमी आत्मदर्शी होकर सर्वेश्वरानन्द जी का सनिध्य प्राप्त कर सकता है।

सर्वेश्वरानन्द जी हिमालय की विभूतियों में एक हैं। वे संसार में हो रही गतिविधियों से परिचित हैं। भारत के विकास और दुर्दशा, दोनों को उन्होंने देखा। उन्होंने अतीत को भी अवलोकित किया है। वर्तमान तो उनके सामने से गुजर ही रहा है। वे भविष्य में होने वाली घटनाओं से भी परिचित हैं। सर्वेश्वरानन्द जी की आत्मा बहुत श्रेष्ठ है। उनका भौतिक शरीर भी बहुत पुराना है। उनकी आयु ६७३ वर्ष की है। दुबला-पतला शरीर है। उनके शरीर की सब हड्डियाँ दिखाई पड़ती हैं। वे लम्बे हैं और हमेशा नंगे रहते हैं। पहले वस्त्र पहनते थे। दो कूप की तरह अँधेरे में झाँकती आँखें हैं और लम्बी-लम्बी जटाएँ हैं। वे ज्यादातर हिमालय में रहते हैं। गर्मियों में वे टिहरी और पिण्डारी की तरफ आ जाते हैं। जाड़ों में हिमालय में और ऊपर चढ़ जाते हैं। कभी-कभी पौड़ी देवल के गाँवों में आकर धूनी जलाकर रहते हैं। खाती में भी आकर रहते हैं। अग्नि उनकी प्रियसंगिनी है। पर वे अग्नि केवल संकेत में प्रकट कर देते हैं। वे मार्कण्डेय जी, व्यास जी की ज्यादा चर्चा करते हैं। कभी-कभी सर्वेश्वरानन्द जी खाती गाँव में मेरी कुटिया में आकर महीनों ठहर जाते हैं। सन् १९७७ के जून-जुलाई में मेरे पास ही ठहरे थे।

सर्वेश्वरानन्द जी पहले प्रायः तपोवन और सतोपंथ ग्लेशियर में रहते थे। अब वे संसार में हो रही घटनाओं को देखकर मानव के कल्याण के लिए नीचे की गुफाओं तक आने लगे हैं। वे संसार में अपनी आध्यात्मिक चेतना की लहरें प्रवाहित करना चाहते हैं। सभी आघात करने वाली संभावित घटनाओं में परिवर्तन कर देने का उनका प्रयास जारी है, भावुक होकर बहुत कुछ कह जाते हैं, तो कभी कुछ बोलते ही नहीं। वे प्रत्येक व्यावहारिक कर्म को अध्यात्म का रूप देना चाहते हैं और सभी को हिमालय की नदियों, वनों, उपवनों, झरनों, हिम मंडित शिखरों और चट्टानों से शिक्षा लेने का प्रोत्साहन देते हैं। हिमालय का कण-कण पत्ता-पत्ता प्रकृति का सन्देश प्रवाहित कर रहा है। मानव के लिए हिमालय जैसा पवित्र गुरु और आर्ष ग्रन्थ और दूसरा कोई नहीं है। हिमालय में सम्पदा भी बहुत है और हिमालय में वैभव भी काफी है। सर्वेश्वरानन्द जी हिमालय तक ही सीमित रहते हैं। वे कभी तराई में नहीं आते। सर्वेश्वरानन्द जी मार्कण्डेय ऋषि की परम्परा में हैं। बहुत पढ़े-लिखे नही हैं, पर सम्पूर्ण ज्ञान, विज्ञान उनमें निहित

है। वे एक परम योगी हैं और संसार को मोड़ने के लिए मंत्र को अधिक महत्त्व देते हैं।

सर्वेश्वरानन्द जी बड़े मुक्त विचार के हैं। भक्ति और योग दोनों को वे एक ही रूप मानते हैं। संकल्प शक्ति ही सृष्टि और प्रलय के दो भिन्न रूपान्तर हैं। इस स्थिति में आ जाने के बाद आदमी आम आदमी से अलग हो जाता है। वह संकल्प द्वारा प्राकृतिक माया से अपना सम्बन्ध जोड़कर सम्पूर्ण विश्व में स्थित हो जाता है। वह कार्य करे या न करे, दोनों स्थितियों में बराबर है। वह जन्म और मरण के बन्धन से मुक्त है।

गढ़वाल के पहाड़ों से हिमालय की व्यास घाटी और सतोपन्थगल के नन्दन वन और तपोवन घाटी से गंगा बह रही है। भगीरथ के अथक प्रयास के बाद, हिमालय की अन्य घाटियों से अन्य नदियों को लेकर वह दौड़ रही है, जिसमें झरनों का पानी, तालाब और नालों का जल तथा अन्य नदियों का प्रवाह मिल रहा है। वह सबको समेट कर बह रही हैं। पर्वत, नदियाँ, झरने, जंगल के पेड़-पौधे व वनस्पतियाँ सब ने अपने-अपने संदेश का माध्यम गंगा को बनाया है। सर्वेश्वरानन्द झुक-झुक कर नदी से कुछ पूछ रहे थे । नदी भी कुछ कह रही थी। कभी गोमुख पर तो कभी गंगोत्री तटपर। नदी के साथ वे भी बढ़ते रहे। उत्तरकाशी के किनारे नारायण स्वामी मिल गए। नारायण स्वामी की आँखें खराब हो गई थीं। उन्हें दिखाई नहीं पड़ता था। प्रायश्चित कर रहे थे, तभी सर्वेश्वरानन्द जी ने उन्हें गंगा से पुनः ज्योति प्राप्त करने का सन्देश दिया। लगातार एक मास तक़ गंगा किनारे वास करने पर नारायण स्वामी ने पुनः नेत्र ज्योति प्राप्त की । तब तक सर्वेश्वरानन्द जी गंगा किनारे से हटकर भिलंगना और भागीरथी के संगम पर आ गए थे।

टिहरी में दो नदियों के संगम के किनारे बैठे योग का समन्वय कर रहे सर्वेश्वरानन्द माया की लीला देख रहे थे। हर तरफ परमात्मा का समभाव दृष्टिगोचर हो रहा था। तभी वैराग्य को प्राप्त स्वामी रामतीर्थ सर्वेश्वरानन्द के समक्ष आ गए। ब्रह्म चिन्तन के गहन विचारों में खोए हुए स्वामी रामतीर्थ में उन्होंने योगी का बड़ा विकसित रूप देखा। तब सर्वेश्वरानन्द ने रामतीर्थ को योग का मूल ज्ञान दिया।

एक बार पायलट बाबा से बद्रीनाथ क्षेत्र में योगिराज सर्वेश्वरानन्द जी मिले थे। सुन्दरनाथ जी ने कहा कि सर्वेश्वरानन्द जी आ रहे हैं। तुम्हारी विचार-तरंगों ने उन्हें भी प्रभावित किया होगा। खट्-खट् खड़ाऊँ की आवाज आने लगी। सभी लोग खड़े

हो गए। अपने स्थान पर झुककर सुन्दरनाथ जी ने सर्वेश्वरानन्द जी का स्वागत किया। पायलट ने चरण स्पर्श किया। वीरेन्द्र ने अपनी पत्नी के साथ झुककर चरणों को छूकर मस्तक पर लगाया तो पायलट के कन्धे पर हाथ रखकर उन्होंने वीरेन्द्र, लक्ष्मी के साथ-साथ पायलट को भी आशीर्वाद दिया।

पायलट बाबा के शब्दों में पहले दोनों पति-पत्नी के भाग्य को सराहते हुए मेरे साथ हिमालय विचरण के लिए प्रेरणा दी और कहा, "क्यों महर्षि कपिल, अब तो बद्रीनाथ के प्रति आस्था जुड़ गई होगी। अब आओ, पुनः कोई ऐसी विचारधाराएँ उत्पन्न न हों।" मैं लपककर उनकी बाहों के घेरे मे आकर सीने से लग गया। सो जाने की भावना जाग्रत हुई, फिर लुप्त हो गई। बड़ा ही लम्बा शरीर था, बाबा का। कोई भी वस्त्र धारण नहीं किए हुए थे। हड्डियाँ स्पष्ट नजर आ रही थीं। मनुष्य जीवन की यही उपलब्धियाँ श्रेष्ठ कही जाती हैं। आत्मीय पराकाष्ठा तथा ईश्वरीय सानिध्य को पाने के लिए इस जीवन का निर्माण होता है। अद्वैत वृत्तियाँ ही इस संसार-सागर में भ्रमण करने के लिए अनुकूल हैं।

"मैं सर्वेश्वरानन्द हूँ। मनुष्य था, मनुष्य ही हूँ। पर ६७३ वर्षों से ऐसे ही भ्रमण कर रहा हूँ और अभी तक हिमालय स्थित सभी महात्माओं के परम तत्त्वों को नहीं समझ पाया हूँ। ये सुन्दरनाथ जी हैं। मेरे समकालीन, पर कुछ बाद में हिमालय के आँगन नें आए। बद्रीनाथ खण्ड ही इनका सब कुछ है। अब तो आप को अनुभव हो गया कि हिमालय क्या कह रहा है। आओं बैठो। कुछ बाँटें, कुछ खाएँ।" सुन्दरनाथ जी द्वारा दिया गया कन्द और शहद रखा था। मैंने उठकर उसे उन्हें दिया। कुछ कन्द और शहद वे ले लिये। फिर सुन्दरनाथ जी ने भी ले लिया। खा लेने के बाद हम पाँचों कुछ देर तक टहलते रहे। सुन्दरनाथ जी ने जड़ी बूटियों का परिचय कराया।

नारी सुलभ, सरल और रक्षा की प्रतीक है। अतः हे माँ ऐश्वर्य ! तू भी कुछ ले और सर्वेश्वरानन्द जी ने वीरेन्द्र की पत्नी के शिर पर हाथ रखकर तीन थपकियाँ दी और वहीं से मुड़कर जाने लगे। फिर कभी महर्षि आइएगा, सतोपन्थ की तरफ। मैं भी पिण्डारी मिलने का प्रयास करूँगा। हमने सुन्दरनाथ जी को भी नमस्कार कर उन्हें भी रुक जाने के लिए कहा, पर वे हमें ग्लेशियर से निकाल कर शहर के करीब तक छोड़ गए।

पायलट बाबा को योगिराज का एक अन्य अवसर पर भी सानिध्य लाभ हुआ था। उन्हीं के शब्दों में महावतार बाबा तथा सर्वेश्वरानन्द जी भी आ गए। निखिलानन्द बहुत शर्मिन्दा थे। पिण्डारी से वापस होने लगे। फिर महावतार बाबा ने अन्तरिक्ष यात्रा का प्रस्ताव रखा। हम पाँचों एक साथ ही अन्तरिक्ष की ओर

चल दिये। हम पाँचों सूक्ष्म शरीर से गमन कर रहे थे। हम देवलोक जा रहे थे। रास्ते में सैकड़ों लोग एक दिशा की ओर जाते नजर आए। कोई सशरीर ही उड़कर जा रहा था। कोई रथ के आकार का विमान उड़ाए जा रहा था। कोई तश्तरीनुमा विमान उड़ाए जा रहा था। सबकी दिशा एक थी। सबकी आकृति मनुष्य की तरह थी। इनमें स्त्री-पुरुष दोनों ही थे। वे भिन्न-भिन्न प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लिये हुए थे। उनके शरीर से प्रकाश निकल रहा था। वे वस्त्रों के स्थान पर आभूषणों से अपने अंगों को ढँके हुए थे। हम अपनी गति से चले जा रहे थे। तभी हमारे सामने एक विमान आकर रुक गया। उसने हमारे रास्ते में अवरोध उत्पन्न किया। हम दिशा परिवर्तन कर आगे बढ़ना चाहते थे। तभी भगवती यान में खड़ी हो गई। वह नन्दा देवी थीं- गौरी-शिव की शिवा। मैं बहुत बार इनकी कृपा का पात्र रहा हूँ। हम सभी रुक गए। इनके साथ में दर्जनों अन्य देवियाँ थीं। वे देवियाँ बड़ी उग्र की नजर आ रही थीं। वे रह-रह कर अपने हाथों को हमारी ओर फेंक रही थीं। हनुमान जी हँसने लगे तो वे और भी उग्र हो गईं। वे देवियाँ उग्रता का प्रयोग हम पर कर रही थीं। नन्दा देवी ने उन्हें रोका और बोलीं, "तुम्हारा सबकुछ बेकार हो जाएगा। वे राग-द्वेष से परे होकर सूक्ष्म शरीर द्वारा गमन कर रहे हैं। तुम अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए इनसे कह सकती हो। नान्तिन बाबा शक्ति के उग्र उपासक थे। वे तुम्हारा माध्यम बनते थे किन्तु ये तो परतत्त्वों, परभूतों से एकजुट होकर अद्वैत मार्ग के पथिक बने हैं। इनपर तुम्हारी कोई शक्ति कारगर न होगी।" यान के दूसरे खण्ड में जाकर हम बैठ गए। माँ ने हमें भौतिक शरीर निर्माण की इजाजत दे दी।

हमने क्षण भर में अपने भौतिक शरीरों का निर्माण कर लिया। यान कई खण्डों में विभाजित था तथा वह इच्छाशक्ति से चालित था। मन की विचार-तरंगों के अनुरूप उसकी गति थी। विमान सफेद रंग की धातु का बना था। वह धातु इतनी चमकीली थी कि विमान चारों तरफ सूरज के सदृश प्रकाशवान् था।

विमान उसी दिशा की ओर जा रहा था, जिधर सभी जा रहे थे। कुछ ही क्षण बाद हम चन्द्रमण्डल की आकृति के एक ग्रह में प्रवेश कर गये। बर्फ के सागर के ऊपर अनेकों यान खड़े थे और अन्तरिक्षवासी भी। हम सब भी उतरकर आगे बढ़े। माँ ने बाताया कि आज यहाँ यज्ञ का प्रारम्भ है। देवताओं और आत्मज्ञानियों के लिए हमने पूजा का आयोजन किया है। ये सब गण-गणनियाँ व्यवस्था करने में लगी हैं। आपलोग भी इस यज्ञ में भाग लें, इसलिए मैं स्वयं लेने गई थी।

योगिराज सर्वेश्वरानन्द जी एक आत्मलीन, परतत्त्व में रमण करने वाले महासिद्ध सन्त हैं। जन्म-मृत्यु को उन्होंने अपनी मुट्ठी में बन्द कर रखा है। वे मानव कल्याण के लिए दत्तचित्त रहते हैं। भारत तथा विश्व के जाने माने मनीषियों—स्वामी रामतीर्थ, नारायण स्वामी, पायलट वावा, आचार्य श्रीराम शर्मा आदि को वे मार्गदर्शन दे चुके हैं। वे एक महायोगी, महाज्ञानी, महासिद्ध, परम विरक्त, आत्मलीन एवं जनकल्याण में दत्तचित्त महात्मा हैं। उच्च साधना के वल पर लोग उनका दर्शन कर सकते हैं।

❑

चिरंजीवी अश्वत्थामा

परमात्मा की सृष्टि अतिशय विशाल है। इस ब्रह्माण्ड का कोई ओर-छोर नहीं। रात्रि में आकाश में हमें जो असंख्य तारे दिखाई पड़ते हैं, वे हमारे सूर्य से कम प्रकाशमान नहीं हैं, किन्तु अत्यन्त दूर होने के कारण वे बहुत छोटे दिखाई पड़ते हैं। जब हम एक सूर्य के मण्डल के बारे में ही इतना कम जानते हैं, तब हम रात्रि में सितारों के रूप में दृष्टिगोचर होने वाले अगणित सूर्यों के बारे में कितना जानेंगे? प्रस्तुत प्रकरण में यह भी ज्ञातव्य है कि ये सारे सूर्य मात्र एक आकाश गंगा में अवस्थित है तथा जितने सूर्य हैं, लगभग उतनी ही आकाश गंगाएँ है। जरा अनुमान कीजिए कि कुल मिलाकर कितने सूर्य होंगे।

आजकल यह आम बात है कि यू०एस०ए० या भारत या रूस में कहीं कोई मैच हो रहा होगा तथा सम्पूर्ण विश्व के लोग अपने घरों में बन्द कमरों में बैठे हुए उसे देख रहे होंगे। किसी को इस बात में अविश्वास नहीं होगा क्योंकि टी०वी० के माध्यम से यह एक सामान्य बात है परन्तु महाभारत काल में जब संजय धृतराष्ट्र को आँखों देखा हाल घर के अन्दर बैठे-बैठे दिव्य दृष्टि से बता रहे थे, उस बात पर पहले बहुतों को सन्देह होता रहा होगा।

जब टी०वी० जैसी जड़ वस्तु में इतनी शक्ति हो सकती है, तब चेतन मानव शरीर में कितनी शक्ति तथा क्षमताएँ हो सकती हैं, इसका सहज में अनुमान लगाया जा सकता है।

प्रायः हम जिन लोगों के बीच में रहते हैं, उन्हीं के बारे में जानते हैं तथा उन्हीं के मध्य से पाए गए अनुभव या ज्ञान के आधार पर अपनी धारणाएँ बना लेते हैं। सामान्यतः समाज में अधिकांश लोग ऐसे होंगे जिन्होंने १०० वर्ष तक जीने वाले स्त्री-पुरुषों को ही नहीं देखा होगा। बहुत कम लोग होंगे, जिन्होंने १०० वर्ष की आयु तक जीने वाले व्यक्तियों को देखा होगा। समाचार पत्रों के माध्यम से बहुत से लोग यह जानते होंगे कि कुछ लोग विश्व में लगभग ११० वर्ष तक भी जी जाते हैं। देवरहा बाबा को निकट से जानने वाले लोग यह सुनिश्चित रूप से मानते हैं कि उनकी आयु कम से कम १५० वर्ष की थी। योगेश्वर तैलंग स्वामी, जिन्हें स्वामी विवेकानन्द के गुरु श्री रामकृष्ण परमहंस ने साक्षात् विश्वनाथ कहा था, लगभग २५० वर्षों तक जीवित रहे थे।

समाधि के माध्यम से व्यक्ति अपनी आयु, इच्छा होने पर सैकड़ों-हजारों वर्षों तक बढ़ा सकता है। कायाकल्प के माध्यम से भी आयु को बढ़ाया जा सकता है। पर काया प्रवेश के माध्यम से भी लोग आयु को बढ़ाते रहते हैं। परमतत्त्व में सदा लीन रहने वाले ऋषियों, मुनियों तथा योगियों के आशीर्वाद से भी लम्बी आयु प्राप्त हो जाती है।

जड़ वस्तुओं के विज्ञान की तरह शरीर का भी एक अति उच्च स्तरीय विज्ञान है। मेडिकल साइंस ने यद्यपि बहुत प्रगति की है, लेकिन शरीर से सम्बन्धित सूक्ष्मतम जानकारी के लिए योग की गहराइयों में जाना पड़ेगा। जिस प्रकार से एक सफल डाक्टर बनने के लिए पहले व्यक्ति इण्टर या बी०एस०सी० करता है तदुपरान्त एम०बी०बी०एस० करता है, फिर एम०डी० करता है तथा कुल मिलाकर इसमें लगभग २२ वर्ष का समय लगता है। इसी प्रकार से योग में निष्णात होने के लिए पहले धौति, वस्ति, नेति, त्राटक, कपालिभानि आदि छः क्रियाएँ करनी पड़ती हैं, तदुपरान्त योग के अनेक आसन तथा मुद्राओं में दक्षता प्राप्त करनी होती है तथा अभ्यास करते-करते यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा एवं ध्यान में परिपक्व हो जाने पर समाधि की स्थिति प्राप्त हो जाती है, तब कोई व्यक्ति योग में सिद्धि पाता है। योग की सर्वोच्च ऊँचाइयों में जाने के लिए योगी जन लम्बी-लम्बी समाधियां लगाते हैं। मैं एक योगिराज के निकट सानिध्य में काफी लम्बे समय तक रहा हूँ। उन्होंने छः-छः मास की दो समाधियाँ, एक समाधि १ माह की, एक समाधि १३ मास की, एक समाधि २ वर्ष की तथा एक समाधि २ वर्ष २४ दिन की लगाई थी।

समाधि में निष्णात हो जाने पर योगी के सामने शरीर विज्ञान के सूक्ष्मतम रहस्य खुल जाते हैं तथा उसे ज्ञात हो जाता है कि इस शरीर के अन्दर एक सूक्ष्म शरीर होता है तथा सूक्ष्म शरीर के अन्दर कारण शरीर होता है।

सूक्ष्म शरीर की सत्ता में पहुँच जाने वाले योगी जब भी चाहें, अपना दूसरा शरीर बना सकते हैं। एक स्थूल शरीर का परित्याग कर देने पर वे चाहें तो सैकड़ों-हजारों वर्षों तक जन्म ही न लें तथा जब चाहें तब संकल्प करते ही इच्छा शक्ति से पूर्ववत् अपना स्थूल शरीर बना लें। सूक्ष्म शरीर में रहने वाले योगी हजारों-लाखों वर्षों तक जीवित रह सकते हैं। सूक्ष्म शरीर से भी सूक्ष्मतर सत्ता कारण शरीर की है। कारण शरीर में रहने वाले योगिराज लाखों करोड़ों वर्षों तक जिन्दा रह सकते हैं। कारण शरीर में रहने वाले योगी जब चाहें तब वे सूक्ष्म शरीर या स्थूल शरीर का निर्माण कर सकते हैं।

यह भारतीय संस्कृति तथा उच्च स्तरीय साहित्य की मान्यता है कि हनुमान, व्यास, राजा बलि, कृपाचार्य तथा अश्वत्थामा आदि सात लोग चिरंजीवी हैं। हनुमान जी अब पहले के युद्ध करने वाले हनुमान जी नहीं रहे। अब वे अधिकांशतः ध्यान तथा समाधि में लीन रहते हैं। वे अब साधना की इतनी गहराइयों में जा चुके हैं कि यदि रावण अब उनके सामने आ जाए तथा हनुमान जी उसे घूर कर देख दें, तो उनके नेत्रों के तेज से वह मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यदि वे रावण को शाप दे दें तो रावण वहीं भस्म हो जाए। अब हनुमान जी बड़े-बड़े योगियों का मार्ग दर्शन करते हैं तथा उन्हें योग की गहराइयों में पहुँचने में मदद करते हैं। योगेश्वर हनुमान जी इस समय ज्यादा करके हिमालय में कदली बन में रहते हैं।

महाज्ञान के भण्डार महामुनि वेदव्यास भी चिरंजीवी हैं। उन्होंने ही वैदिक ऋचाओं को संकलित करके उनके आशय के अनुसार उन्हें व्यवस्थित किया तथा उन्हें ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्वेद का नाम दिया। उन्होंने ही १८ पुराणों की रचना की। वेद व्यास ने नवीं शती के पूवार्ध में जगद्गुरु शंकराचार्य को हिमालय में दर्शन देकर उन्हें अद्वैत वेदान्त का प्रचार करने की प्रेरणा दी थी। बताते हैं पहले जब वाराणसी के आस-पास बड़े-बड़े जंगल थे, तब वेदव्यास काशी प्रायः आते थे तथा जंगलों में तथा गंगा जी के पास बालू में उगने वाली झाड़ियों में रहा करते थे। परन्तु अब जंगलों के कट जाने के कारण वे सम्भवतः हिमालय में ही अपना समय बिताते हैं। प्रकाण्ड विद्वानों तथा महायोगियों को ही उनका दर्शन हो पाता है।

कृपाचार्य जी अब महाभारत वाले कृपाचार्य नहीं रहे। अब वे योगिराज एवं योगेश्वर हैं। वे महायोगियों का मार्ग दर्शन करते हैं तथा उन्हें लोक कल्याण के लिए प्रेरित करते हैं। उनमें अपने लिए सत्ता, सुवर्ण या सम्मान पाने की अब कोई भावना नहीं हैं। वे अधिकांशतः समाधि में ही लीन रहते हैं। जन कल्याण तथा लोक मङ्गल में उनकी बड़ी रुचि है। बताते हैं कि महावतार बाबा तथा हेड़ियाखान बाबा के नामों से वे ही योग तथा ध्यान का बड़ा प्रचार कर चुके हैं। वे अधिकांशतः हिमालय में ही रहते हैं।

अश्वत्थामा के नाम से करोड़ों लोग सुपरिचित हैं। वे पाण्डवों, कौरवों के गुरु द्रोणाचार्य के सुपुत्र हैं। पाण्डव पक्ष ने महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य का वध करने के लिये भयंकर छल, धोखा तथा मिथ्याचरण किया था। युधिष्ठिर ने 'अश्वत्थामा हतो, नरो वा कुंजरो' कहा तथा कृष्ण ने 'वा कुंजरो' कहे जाने के पूर्व

ही शंख बजा दिया। इस प्रकार से इन दो महाविभूतियों ने छल किया तथा द्रोणाचार्य को यह सुनाई पड़ा कि अश्वत्थामा मारे गए। महायोद्धा महागुरु अपने प्रिय पुत्र का निधन सुनकर अतिशय व्याकुल हो गए तथा उन्होंने धनुष-बाण का परित्याग कर दिया। महागुरु अपने प्राणाधार पुत्र के वियोग को न सह सके। वे अपने रथ से नीचे उतर पड़े तथा भूमि पर आसन लगाकर बैठ गए। आसन पर विराजमान होकर महागुरु समाधि में निमग्न हो गए। धृष्टद्युम्न समाधि में लीन, युद्ध से पूरी तरह विरत महागुरु का शिर नीचतापूर्वक काट लाया। इस पाप कर्म के ही कारण युधिष्ठिर के शरीर का एक अंग हिमालय में स्वर्गारोहण करते समय गल कर गिर गया था।

इसी का दण्ड देने के लिए, अपने पूज्य पिता, महायोद्धा, महाज्ञानी, महागुरु द्रोणाचार्य की नीचतापूर्वक हत्या का प्रतिशोध लेने के लिए, उस हत्या के बदले के लिए जिसके लिए महायोद्धा अश्वत्थामा के नाम का ही सहारा लिया गया था, अश्वत्थामा ने भावावेश में पाण्डव पुत्रों का वध कर दिया।

चूँकि अश्वत्थामा को अमरता का वरदान प्राप्त था, अतः इतना भीषण एवं विकराल युद्ध होने पर भी अश्वत्थामा जीवित रहे। प्रकृति, समाज तथा मानव द्वारा रचित घटनाक्रम उनकी बराबर रक्षा करते रहे।

अश्वत्थामा ने अपने तत्कालीन जीवन में निर्धनता, अपार वैभव, विपुल, सम्मान एवं सुयश, राजसी वैभव, सर्वग्रासी भीषण युद्ध, भयंकर विनाश, भीषण जनसंहार आदि सभी बातें देखी थीं।

अतः विनाशकारी महाभारत के युद्ध के पश्चात् उन्हें वैभव एवं सामाजिक कृत्यों से वैराग्य हो गया। उन्होंने परमतत्त्व की प्राप्ति एवं भगवान् शिव की उपासना को ही अब अपने जीवन का ध्येय बना लिया।

महाभारत युद्ध के बाद उन्होंने ऋषि-मुनियों की तपस्थली हिमालय तथा पावन नर्मदा नदी के तट को अपनी विचरण स्थली बना लिया। ऋषि, मुनि तथा महायोगी ही उनके मार्ग दर्शक, पिता तथा शुभिचन्तक हो गए। वे अब भी अधिकतर हिमालय में या नर्मदा नदी के तट पर रहते हैं। नर्मदा जी के तट पर भी वे ज्यादा करके सुल्पानेश्वर महादेव जी के मन्दिर में आते-जाते रहते हैं। यदि किसी ने उन्हें देखा भी तो वह उन्हें भील समझता भी है।

अश्वत्थामा अब पहले वाले अश्वत्थामा नहीं रहे। अब वे योगिराज हैं। महाज्ञानी, परमतत्त्ववेत्ता। उनके बारे में यह मान्यता है कि वे अगले कल्प में सप्तर्षियों में से एक ऋषि बनेंगे।

पावन नर्मदा नदी के तटपर, परम पवित्र सुल्पानेश्वर महादेव के मन्दिर में महर्षि कपिल अद्वैत को अश्वत्थामा का दर्शन हुआ था। वे कई महीनों तक इस युगान्तर पुरुष के साथ रहे थे। महर्षि कपिल के ही शब्दों में इस साक्षात्कार का विस्तृत वर्णन नीचे प्रस्तुत है—

पहाड़ी बाबा और सन्त सरस्वती गिरि के साथ जाड़ों के दिन हम दिल्ली में मोतीबाग और शास्त्री निकेतन के बीच टीले पर बिता रहे थे। छोटा सा शिव का मन्दिर तब था- अब सो वह बड़ा बन चुका होगा।

पहाड़ी बाबा ने गुजरात के सन्तों की चर्चा छेड़ दी। जो नर्मदा के किनारे रहते हैं। दिल्ली में रहते काफी दिन गुजर गये थे। हाल ही में हम दोनों बिहार के डोल्टेनगंज से आये थे। नदी के किनारे कुछ दिन रहकर, अपनी क्रियाओं का आदान प्रदान करके, डाल्टेनगंज-पूर्वडीहा के जन -जीवन में एक अमिट छाप छोड़ आए थे। नर्मदा हमें रह-रह कर आवाज दे रही थी। उसकी कल-कल करती लहरों की ध्वनि हम दोनों के कानों में गूँज रही थी। उसके तट पर रह रहे महर्षियों का तप करता हुआ शरीर नजर आ रहा था।

एक दिन हम दोनों शिव की प्रियदर्शनी की कहावतों का अनुकरण कर नर्मदा किनारे चल पड़े। नर्मदा के साथ शिव से लेकर मानव तपस्वियों तक की अनेक कथाएँ चचर्ति थीं। नर्मदा के किनारे-किनारे चल कर हम दोनों सुल्फान की झाड़ियों में प्रवेश कर गए। इस जंगल के साथ भीलों का एक लम्बा इतिहास जुड़ा हुआ है। बड़ा विकट जंगल था। चारों तरफ दिन में भी रात्रि जैसा गहन अँधेरा बना रहता था। यहाँ भीलों का निवास है। पहाड़ी बाबा पहले भी इस जंगल से निकले थे और वे भीलों की सारी हरकतों से परिचित थे। भील प्रायः नर्मदा की परिक्रमा करने वाले महात्माओं को लूट लेते थे, साधु हो या गृहस्थ, वे सभी को एक ही घाट पर पानी पिलाते थे। पर वे बंजारों को नहीं लूटते थे। काफी सामान के साथ बंजारे उस राह से आते-जाते थे। वे उन्हें कुछ भी नहीं बोलते थे और परिक्रमा कर रहे लोगों को नंगा करके छोड़ देते थे।

पहाड़ी बाबा और मैं मात्र एक-एक कौपीन धारण कर इस जंगल के रास्ते से निकल रहे थे। राह में कुछ भीलों ने हमें देख लिया और उ-उ-उ करके लम्बी साँस खींचते हुए चिल्लाने लगे। हम दोनों ठिठक कर रुक गए। फिर पहाड़ी बाबा ने कहा चलते रहो। ये अपने आदमियों को सुना रहे हैं। हम दोनों की बगल में एक-एक पोटली थी जिसमें हम लोगों ने विभूति रख रखी थी और नीम के कुछ पत्ते। वे भील वैसे ही चिल्लाते हुए हमारे पीछे-पीछे

चले आ रहे थे। कुछ ही देर में सैकड़ों भीलों ने हमें चारों तरफ से घेर लिया। उनके हाथों में तीर, धनुष और भाले थे। उन्होंने हमें पकड़ लिया और हमारी पोटलियाँ छीन लीं और उसे खोलकर देखने लगे। राख और पत्ते देखकर सभी झील हम दोनों के मुँह ताकने लगे और आपस में बाते करने लगे। दोनों पोटली को पुनः बाँध कर सभी भील चलने का इशारा करने लगे। वे हमें अपनी झोपड़ियों में ले गए। पत्तों की बनी चटाई पर हमें बैठा कर बड़े व्यवस्थित ढंग से धूनी बनाकर आग जलाई। थोड़ी देर बाद घास की बनाई बड़ी-बड़ी दो रोटियाँ और मधु हमें खाने को दिया। हम दोनों ने दोनों रोटियों और शहद को तोड़ कर मिला दिया। और थोड़ा-थोड़ा सभी को प्रसाद की तरह बाँटा। वे बड़े खुश थे। थोड़ा-थोड़ा हम दोनों ने भी खाया।

फिर उन लोगों ने वहाँ पर हमारे लिए झोपड़ी बना दी। लकड़ियों का ढेर लगा दिया और तरह-तरह के कन्द और जंगली फल-फूल इकट्ठे कर दिए। भीलों ने हमारी सेवा में कितने ही दिन और रात गुजार दिए। बड़ी ही दुर्लभ भक्ति थी उनकी। वे भील थे। पर उनकी अपनी एक सभ्यता थी। उनकी अपनी व्यवस्था थी। नियम था। जिन नियमों का कोई भी उल्लंघन नहीं कर पाता था। वे अनुशासित ढंग से रहते थे। अपने मुखिया की बातों को वे भगवान् की बात समझते थे। शिव उनके देवता थे। वे दिन भर जंगलों में शिकार की खोज में इधर-उधर घूमा करते थे। आदमी को वे लूटते थे। जानवरों को मार कर खाते थे। वे सभ्य थे, पर अपनी सभ्यता में। प्रतिदिन सुबह और शाम सैकड़ों भील हम दोनों के पास जाकर बैठते थे। कभी-कभी वे सब रात-रात भर नाचते और गाते थे। अपने पर्व के दिन वे कुछ भी नहीं करते थे। बहुत से भील तो वे वस्त्र पहनते थे, जो उन्होंने लूटे होते थे। पर अधिकतर पत्तों की बनाई हुई पट्टी ही पहनते थे या लकड़ियों के छिलके को पतला बनाकर लपेटे तहते थे। स्त्रियाँ भी यही करती थीं। सभी केवल कमर से नीचे ही वस्त्र पहनते थे। मैं उन भीलों में प्रत्येक दिन एक विशेष व्यक्ति को देखता था। जो प्रतिदिन आता था। उसकी आँखों में एक तेज था। भीलों की तरह वह रहता था। पर कद काफी लम्बा था। वह सदैव पीत वस्त्र पहने रहता था। जब कभी भी हमने उससे कुछ पूछना चाहा तो वह उसके पहले ही चल देता था। रहते हुए काफी दिन गुजर गए थे। सुल्पान की झाड़ी के जंगल में हम जिधर भी चाहते थे, उधर टहल आते थे। अब हम पूरे जंगल से परिचित हो गए थे। सभी भील हमें पहचानने लगे थे और सभी भीलों की जातियों से हम परिचित हो गए थे और उनके रहन-सहन को जान गए थे।

एक दिन अचानक उसी व्यक्ति पर मेरी नजर जाकर स्थिर हो गई। हम सुल्पानेश्वर महादेव मन्दिर पर विश्राम कर रहे थे। वह काफी लम्बा जवान था। खड़ी-खड़ी मूँछें थीं। सौम्य और शांत था। स्वभाव का स्थिर था। सिर पर पीले रंग की पगड़ी बाँधे हुए था, जिससे सारा ललाट ढका हुआ था। भुजाएँ बहुत लम्बी-लम्बी थीं। पहाड़ी बाबा को मैंने उस भील के बारे में बताया। शायद भील मेरी बातों को समझ गया और एक अद्भुत सम्मोहन पूर्ण मुस्कान विखेरता हुआ उठ कर चल दिया। मैं भी उनके पीछे-पीछे लग गया। पहाड़ी बाबा भी आने लगे थे। भीलों का जत्था हमारे साथ हो लिया। मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ते हुए उस विशाल भील पुरुष ने पीछे मुड़कर हमें लौट जाने का आग्रह किया। उसके कहने में बड़ा मीठा निवेदन था। तब तक मैंने समीप पहुँच कर उनके पैर पकड़ लिया, "आप जो भी हों मुझे आप का परिचय चाहिए। चाहे हम अधूरे हैं, चाहे पूरे, दोनों हालत में आप हमें मार्गदर्शन कीजिए। आपका दिव्य शरीर और यह ऊँचा मस्तक कह रहा है कि आप आज के पुरुष नहीं हैं। आप कौन हैं। मैं सहृदयतापूर्वक जानने के लिए अपने को आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। न मुझ में अहंकार है, न अपमान की भावना। न मैं आप का निरादर करना चाहता हूँ, न मैं विशेष जानने की इच्छा रखता हूँ। वैसे मैं जान गया हूँ कि आप कौन हैं। फिर भी मैं जानना चाहता हूँ कि क्या आप वही हैं।" भीलों में एक अजीब उत्तेजना छा गई। वे विरोध करने लगे और अपने-अपने तीर-धनुष ऊपर उठा कर हल्ला करने लगे। मैं समझ गया कि वे सब मुझसे नाराज हो गए थे कि मैंने उनके पूज्य का अपमान किया है। वह शिवरात्रि के हर मेले पर बड़ी धूम-धाम से शिव पूजा करते थे। यह कई हजार वर्षों से चला आ रहा है। भीलों का वह पुरुष सबसे सभ्य और पूज्य था। भील शिव के साथ उस भील महापुरुष की भी पूजा किया करते थे।

महान् पुरुष ने भीलों को रोक दिया और मुझे अपनी बाँहों में उठाकर चूम लिया। जिस तरह से एक पिता अपने पुत्र को गोद में बैठा कर प्यार करने लगता है, वैसा ही प्यार मुझे मिला।

"कपिल मैं अश्वत्थामा हूँ। आचार्य द्रोणाचार्य का पुत्र। महाभारत का एक योद्धा रह चुका हूँ। युद्ध का सेनापति अश्वत्थामा हूँ। वह सब कुछ एक इतिहास बन चुका है। मैं भी उस इतिहास का पात्र हूँ। पर मैं सम्पूर्ण अतीत को अपने में सँजोए अभी वर्तमान में ही जी रहा हूँ। इस सुल्पानेश्वर महादेव को ही अपना निवास बना रखा है और इन भीलों को अपना सहयोगी। कभी-कभी कृपाचार्य और विदुर से मिलने हिमालय चला जाता हूँ। नहीं तो इन्हीं भीलों में खोकर प्रायः इतिहास

को जीवित रखता हूँ। आयु की दीर्घस्थ स्थिति में पहुँच कर और रह ही क्या जाता है। वक्त तो हमारे लिए ठहर गया है और वक्त के आगे-आगे हम चल रहे हैं। वक्त के साथ-साथ तो आम आदमी चलने का प्रयास कर रहा है और वक्त हमारे साथ। कृपाचार्य, विदुर के यदा-कदा यहाँ आ जाने से सुल्पानेश्वर भी हिमालय बन जाता है। गोरखनाथ से भी कभी-कभी भेंट हो जाती है, तो ब्रह्माण्ड के अतीत को जगाकर उसमें हम लोग खो जाते हैं। जहाँ जीव अनेकों बार आ-आकर विश्राम करके लौटता रहा है और हम ऐसे ही देखते रहे। न हम जीवन से भाग पाते हैं और न जीवन हमसे भाग पाता है। जीवन ने हमसे समझौता कर लिया है और हमने जीवन से।

कल क्या था। अब क्या है । और कल क्या होने वाला है। तीनों परिस्थितियों से हम परिचित हैं और ये सब जानने के बाद भी हम कुछ नहीं कर पाते। क्योंकि अब हम वह हैं ही नहीं जो कल थे।''

अश्वत्थामा ने अपने सिर की पगड़ी उठाकर नीचे रख ली। घुँघराले बालों का लट बन गया था और ललाट पर एक लम्बा चीरे का दाग बना था, जैसे किसी ने कभी ललाट को फाड़ कर अलग किया हो। घाव मिट गया था, पर गड्ढा नहीं भरा था। काफी गहरा दाग था। चेहरा जलने लगा था। उस गड्ढे में प्रकाश चमक रहा था, आँख से देखना मुश्किल लग रहा था और वह पुरुष काफी पीछे अपने अतीत में डूब गया था। कह रहा था, ''मेरी सामर्थ्य, युद्ध-कौशल, दिव्य कलाएँ सब कुछ यहाँ से मणि निकलने के बाद समाप्त हो गईं। मैं रह गया। मेरा ऐश्वर्य, शौर्य और बल, मुझसे अलग हो गया, पर जो अमरता का वरदान मिला था, उसे न पाण्डव ले सके, न कृष्ण। आदमी तो वही कुछ करता है, जितना वह अपने आप को सामर्थ्यवान समझता है। उपयोग न होते हुए भी मैं इस भूमि पर हूँ और रहूँगा। मेरे संग के अनेक राही सैकड़ों बार आए और चले गए।

जब मैं उन्हें पशु-पक्षियों, सर्पों की योनियों में देखता हूँ, तो सोचता हूँ कितना पराधीन है, वह आदमी जो चाहकर भी कुछ नहीं कर पाता। जन्म लेता है कि कुछ कर पाऊँगा, पर शरीर को प्राप्त करते ही ऐसा कुछ कर बैठता है कि उसे पशु, पक्षी, कीट, पतंग भी बनना पड़ता है। फिर वह एक ऐसा रास्ता अपना लेता है, जो कभी समाप्त ही नहीं होता। आदमी हमेशा के लिए उलझ जाता है। जिस कारण न उपयोग होने पर भी मैं स्थिर हूँ और रह रहा हूँ क्योंकि मुझे रहना है। न मैंने पहले किसी को निर्देशन दिया और न अब किसी को देना है। सब कुछ महाभारत के युद्ध ने करा लिया। अब तो मैं ऐसी जगह पह खड़ा हूँ, जहाँ मैं हूँ और शिव की मेरी अराधना। मैं जानता हूँ कि महाभारत

गुजरे पाँच हजार वर्षों से भी ऊपर हो गया। पर मेरे लिए लगता है कल ही गुजरा है। मेरे लिए यह नहीं लगता कि मैं कल का पुरुष हूँ। पर आज के पुरुष ऐसे लग रहे हैं कि कल जैसे नहीं हैं।''

हम दोनों सन्त दिव्य मूर्ति युगान्तर पुरुष अश्वत्थामा के साथ छः महीने तक रहे। हम कभी-कभी लम्बे सफर में निकल जाते थे और आम लोगों की तरह टहलते रहते थे। पर कोई भी हमें प्रभावित नहीं कर पाता था। अश्वत्थामा जी का कद विशेष लम्बा था। हम शहरों में घूम आते थे। आज का विश्व न जाने कहाँ जाना चाहता है। जो अपने आस-पास में घट रही घटनाओं पर ध्यान नहीं देता। मैंने अश्वत्थामा के साथ रह कर संसार के रिवाजों को जाना कि कैसे हजारों वर्षों का व्यक्ति समाज में ही रहकर समाज से अनभिज्ञ है। वह विशेष व्यक्ति जहाँ है, वहाँ उसको श्रेय न देकर, झूठमूठ की कल्पना का पुल बाँधकर, दूरदराज के व्यक्तियों को मर्यादा का स्थान देता है। समाज करने वाले को निरुत्साहित करता है और नहीं करने वालों को प्रोत्साहन देता है।

हमारे छह माह कैसे गुजर गए पता ही नहीं लगा। एक दिन वह महान् पुरुष मेरे मस्तक को चूम कर तथा पहाड़ी बाबा के सिर पर हाथ रख कर लुप्त हो गया। यह कह कर कि तुम लोग अपने सफर में चले जाना। यहीं तक हमारे संस्कार मिलने के थे और कुछ समय बाद हम दोनों वहाँ से चल कर नर्मदा के किनारे चल दिए। रास्ते में एक और महात्मा युवा सन्त से भेंट हुई।

हम तीनों नर्मदा में सुबह स्नान करने की तैयारी कर ही रहे थे कि एक बहुत बड़ा लम्बा और मोटा साँप पत्थर की चट्टानों के बीच से निकल कर हमारी तरफ आने लगा। हम तीनों भाग जाना चाहते थे, पर अचानक मैं रुक गया। मैंने उस सर्प की ओर देखा। सर्प भी रुक गया और फिर तेजी से दौड़ा। पहाड़ी बाबा भाग कर पानी में जाकर खड़े हो गए थे। तीसरे युवा सन्त धर्मानन्द ने पत्थर उठाकर सर्प को मारना चाहा पर तब तक सर्प ने आकर धर्मानन्द को डस दिया। बेहोश होकर धर्मानन्द गिर गया। सर्प मुड़ कर चल दिया। और थोड़ी दूरी पर जाकर अपने शरीर को सिकोड़ कर एक पत्थर की शिला पर बैठ गया और हमें देखने लगा।

पहाड़ी बाबा ने बहुत प्रयास किया पर धर्मानन्द को नहीं बचा सके। तब पहाड़ी बाबा क्रोधित होकर सर्प की ओर उसे मारने के लिए दौड़े। सर्प वहीं बैठा था। बाबा पत्थर मार सकें उसके पूर्व ही सर्प की जगह पर एक वृद्ध महात्मा खड़े हो गए और हाथ जोड़ कर मुस्कुराने लगे। ''पहाड़ी बाबा जी क्रोध न करें। मैं

तो अवधूत बाबा हूँ। नर्मदेश्वर का हूँ। पच्चास साल से नर्मदा के तट पर पड़े-पड़े, धूप-जाड़ों की ठंड और बरसात की बाढ़ को सहते-सहते इस धर्मानन्द की प्रतीक्षा कर रहा था। आज मेरा कार्य सम्पन्न हो गया और धर्मानन्द भी अपने गुनाहों से मुक्त होकर अब स्वच्छन्द भ्रमण करेगा। आप अब कष्ट न करें। आप का कोई भी प्रयास बेकार जाएगा। इन्हें जल-प्रवाह कर दीजिए। पहाड़ी बाबा को मैंने बहुत समझाया पर उन्होंने ध्यान नहीं दिया। वे धर्मानन्द के शव को एक नाव पर रख कर नर्मदा के पार ले गए। पहाड़ी बाबा की परिक्रमा खण्डित हो गई।

छोटा उदयपुर, गुजरात में धर्मानन्द का डाक्टरी इलाज कराना चाहा। उसके शरीर को सीधा करके पहाड़ी बाबा ने अपना प्रयोग करना शुरू कर दिया। उदयपुर से थोड़ी दूर नर्मदा के किनारे राम मन्दिर पर शव विधिवत तीन दिन तक रखा रहा। सभी प्रयास बेक़ार हो गए। मैं पहाड़ी बाबा की प्रतीक्षा में उस पार ही पड़ा रहा। नर्मदा बह रही थी और जो कुछ वह सन्देश दे रही थी, वह मानव जीवन के लिए अमृतमय है। अवधूत महाराज प्रतिदिन आते और मुझे खाना देकर चले जाते। वे प्रायः सर्प के भेष में आते जाते थे। मेरे करीब आकर अवधूत बन जाते थे। उन्होंने बताया कि मैंने नीम के पेड़ के नीचे नर्मदेश्वर में आज से पच्चास वर्ष पहले तपःस्थली बनाई थी, इसी धर्मानन्द के कारण मुझे शरीर छोड़ना पड़ा था। तब से मैं यहीं प्रतीक्षा में था। मेरे मन में अहंकार था, इसलिए मुझे मौत को गले लगाना पड़ा क्योंकि धर्मानन्द ने मुझे मरने के लिए मजबूर कर दिया था। अपनी कमजोरियों के कारण ही मैं सर्प रूप धारण कर यहाँ रहता आया हूँ। यह पुनः जन्म लेकर फिर नर्मदा किनारे संस्कारों के वशीभूत होकर विचरण करने आ गया।

उस दिन दोपहर को बाबा मेरे साथ ही बैठे थे। तभी बाबा उचक कर खड़े हो गए और बोले, देखो पहाड़ी बाबा ने धर्मानन्द के शरीर को नर्मदा में डाल दिया है और अपनी नाव से इधर आ रहे हैं। नर्मदा की धारा उसे लेकर बह चली है। उसके शरीर को मछलियाँ खाने न पाएँ इसलिए मैं चलता हूँ। तुम मेरे इस सर्प रूप शरीर को उठाकर नर्मदा में बहा देना। जब तक पहाड़ी बाबा मेरे पास पहुँचे, तब तक अवधूत बाबा सर्प शरीर छोड़ कर चल दिए। मैंने सर्प शरीर को उठाकर नर्मदा में प्रवाहित कर दिया और पहाड़ी बाबा को लेकर नर्मदा जिधर जा रही थी, उसी ओर तेजी से आगे बढ़ गया। धर्मानन्द का बहता शरीर दिखाई पड़ रहा था। नर्मदा के उस पार, अखिलेश्वर के करीब धर्मानन्द का शरीर स्वतः नर्मदा के जल से तैर कर बाहर आ रहा था।

पहाड़ी बाबा भी आश्चर्याभिभूत होकर, अपलक नयनों से निहार कर, वेचैन हो रहे थे। धर्मानन्द का शरीर तट के किनारे आकर बैठ गया था। वह व्यक्ति

शारीरिक कसरत करके अपने शरीर को स्वस्थ कर रहा था। पहाड़ी बाबा विचित्र दृष्टि से देख रहे थे। तब मैंने उन्हें बताया कि अवधूत बाबा धर्मानन्द के शरीर में प्रवेश कर उस पार निकले हैं और सारी बातें बता दीं। मेरी नर्मदा परिक्रमा खण्डित नहीं हुई थी और न मैं खण्डित करना चाहता था। अतः मैं आगे बढ़ गया और पहाड़ी बाबा नदी पार कर अखिलेश्वर मन्दिर, सिद्ध पुरुष सोमवारी बाबा की तपस्थली की तरफ चले गए। मैं जान गया था कि अवधूत बाबा वहाँ नहीं रुक सकते। वे हिमालय की ओर जाएँगे क्योंकि धर्मानन्द का शरीर यहाँ के लोगों में परिचित हो गया था और जान गए थे कि सर्प के डसने से धर्मानन्द मर चुका है। पहाड़ी बाबा से पुनः मिलने का वादा कर नर्मदा भी मेरे संग हो ली। नर्मदा का पानी और मैं दोनों अपने सफर में निकल गए। वह सागर में लीन होना चाहती थी और मैं उसके किनारे को समुद्र में मिलते देखना चाहता था।

मैं आगे बढ़ा तो अश्वत्थामा की वाणी मुझे सम्मोहित करने लगी। "जीवन एक विभीषिका है। मनुष्य हो, चाहे देव या राक्षस ब्रह्मा की अलौकिक माया में भ्रमित हो जाते हैं, मनुष्य तो एक सामाजिक प्राणी है। उसे जीवन और मृत्यु के मध्य सांसारिकता के भाव तोल में रहना पड़ता है। पर देव तो इससे परे है और सन्त जन तो परमात्मा को पाकर, अपने आप में रमण करते हैं। उसे भी यदा-कदा ब्रह्म लीला मोहित कर भ्रम में डाल देती हैं। जीव कब तक विराम करेगा। उसे सहारा भी चाहिए। बिना माध्यम का वह कहाँ रुकेगा। इसलिए वह जन्म लेता है और शरीर धारण करता है, तब मायावी जाल उसे अपने में लपेट कर चलने देना चाहता है और जीव स्वतन्त्र होना चाहता है। संसार में जीवों का जीव से यही युद्ध है।

सब कुछ निर्मित है। कर्त्ता, भोक्ता सब ब्रह्म है। पर यहाँ मनुष्य अपने आपको सब कुछ समझ बैठा है। युद्ध निरन्तर चल रहा है। वह गतिशील है। कल महाभारत हुआ था आज भी महाभारत जारी है। कल के हम पात्र थे-आज के तुम । पर यह सब छल है, सब कुछ वही है। वही कर्त्ता है, भोक्ता है, हम सब एक माध्यम हैं। कल-आज-कल ढलता रहा है, ढलता रहेगा। युगों से देखता आ रहा आत्मा आज भी हैं । मात्र शरीर ही तो बदला है। यह सब ब्रह्म की लीला ही तो है, आज-कल में क्या फर्क है। क्रमानुसार भोक्ता और कर्त्ता एक ही में निहित हैं। एक ही के दो उपनाम हैं।" अश्वत्थामा की वाणी की स्मृति सँजोये मैं नर्मदा के किनारे-किनारे चलता रहा, अपने गन्तव्य की ओर, अपने में खोया, अपने में पाया, स्वयं में स्वयं को मिलाकर।

❑

मृत्युंजय योगी

इच्छा मृत्यु की बात तो सुनी है, भीष्म पितामह के बारे में। उन्हें यह वरदान था कि वे तभी मरेंगे, जब वे चाहेंगे। इसी कारण महाभारत के युद्ध में जब वे घायल होकर गिरे, उस समय उनका शरीर लहूलुहान था, सम्पूर्ण काया बाणों से बिंधी हुई थी, परन्तु सूर्य दक्षिणायन थे, अतः उनकी इच्छा के विरुद्ध मृत्यु उन्हें नहीं मार सकी। वे सूर्य के उत्तरायण होने पर ही शरीर छोड़ना चाहते थे, अतः सूर्य के उत्तरायण होने तक वे जीवित रहे।

ईसाई धर्म के प्रवर्तक जीसस क्राइस्ट के बारे में कहा जाता है कि वे मरकर पुनः जीवित हो गए थे। फाँसी दिए जाने के बाद उनका शव कब्र से बाहर हो गया था, तथा उनके बहुत से शिष्यों ने उन्हें सशरीर भली-भाँति जीवित देखा था।

इसी से बहुत कुछ मिलती जुलती बात हिमालय के एक मृत्युंजय महायोगी के बारे में है। जुलाई १९४५ में वे शरीर त्यागकर, हम लोगों की भाषा में मरना चाहते थे, परन्तु उनके एक प्रमुख शिष्य के घोर प्रतिवाद के कारण उन्होंने अपना शरीर नहीं छोड़ा, क्योंकि शिष्य के मत में उनकी पूर्ण शिक्षा नहीं हो पाई थी।

सन् १९५४ में जब उन्होंने देखा कि अब उनके शिष्य प्रतिवाद नहीं कर रहे हैं, तो योगिराज ने शरीर छोड़ने का निश्चय किया। उन्होंने प्रातः साढ़े पाँच बजे सारे शिष्यों को बुलाया तथा उन्हें अपना शरीर छोड़ने की मनोगत इच्छा बताई। एक प्रमुख शिष्य के भविष्य में भी विपत्तियों के समय मदद करने का आश्वासन देकर वे सिद्धासन पर बैठ गए तथा 'ॐ' का उच्चारण करते हुए शरीर त्याग दिया।

सभी शिष्यगण रोने लगे तथा निश्चय किये कि उनके शरीर को वहाँ से ६३ किलोमीटर दूर उनकी गुफा तक ले जाकर जमीन में गाड़ा जाए। ये लोग हिमालय के पहाड़ पर गुरु के शव को लिये हुए दो दिनों तक यात्रा करते हुए लगभग ३० कि०मी० आगे बढ़े। तीसरे दिन प्रातः इन लोगों ने निश्चय किया कि वहाँ की पहाड़ी से गुरुदेव की कन्दराएँ दिख रही हैं, अतः उनके शरीर को वहीं गाड़कर समाधि दे दी जाये। शिष्यों ने ६ फीट गहरा गड्ढा खोदा, शव को गड्ढे में लिटा दिया परन्तु सभी शिष्यों के शरीर जैसे जड़ हो गए। इतने में कुछ दूरी पर स्थित एक फर के पेड़ के नीचे से गुरुदेव की वाणी में आवाज आई। तुम लोग दुखी मत हो। क्या तुम लोगों को मेरे उस शरीर की आवश्यकता

है? सभी शिष्य जोर-जोर से रोते हुए गुरुदेव से अपने मृत शरीर में लौट आने की प्रार्थना करने लगे। गुरुदेव शिष्यों के करुण क्रन्दन से द्रवित होकर अपने सूक्ष्म शरीर से उस मृत शरीर में प्रविष्ट हो गये तथा वह मुर्दा शरीर जीवित होकर उस गड्ढे से बाहर निकल आया।

इन योगिराज के गुरुदेव और भी अधिक महान् योगी थे। वे हिमालय के तिब्बती क्षेत्र में—१६४६ में निवास कर रहे थे। वे हिमालय के योगियों की अखण्ड परम्परा के प्रतिनिधि हैं। वे उस समय याक का दूध और जौ से बना तरल पेय लिया करते थे। उन्होंने एक दिन अपने एक प्रशिष्य तथा एक लामा से हाथ में लकड़ी की कठौती लेने को कहा। इसके बाद उनका शरीर कुछ अस्पष्ट होने लगा तथा वह एक मानवाकार बादल के रूप में बदल गया। कुछ ही क्षणों के बाद बादल भाप बनकर अन्तर्धान हो गया। दस-पन्द्रह मिनट बाद पुनः योगिराज की आकाशवाणी दोनों लोगों ने सुनी। उन्होंने कहा कि तुम लोग उठो तथा हाथ में थाली लो। इसके बाद फिर बादल आया तथा उससे योगिराज अपने पूर्व शरीर में पुनः प्रकट हो गए।

इन योगिराज के बारे में विश्वविख्यात सन्तों के साधना के अनुभव में लिखा जा चुका है, अस्तु यहाँ पर उनके बारे में ज्यादा प्रकाश नहीं डाला जा रहा है।

❑

हरी बाबा

हरीबाबा एक समाधिनिष्ठ महायोगी हैं। शान्ति, चैतन्य, आनन्द तथा समाधि में उनकी सहज गति है। पहले वे हिमालय में एक-एक महीने की समाधि में निमग्न रहते थे। अब भी वे प्रतिदिन २-३ घंटे की समाधि लगाते हैं। हिमालय के बड़े-बड़े योगी—मथुरादास बाबा, महावतार बाबा, औघड़नाथ तथा गुरु गोरखनाथ आदि उनसे सुपरिचित हैं। वे बोलते बहुत कम हैं तथा ज्यादा दूर भी कम आते जाते हैं, परन्तु अपनी इच्छा तथा आवश्यकता के अनुरूप वे कहीं भी किसी भी समय प्रकट हो सकते हैं। कमरा चारों ओर से बन्द हो, वहाँ पर भी वे सशरीर प्रकट हो सकते हैं। वे स्वेच्छा से दूसरे शरीर का भी निर्माण कर सकते हैं। उनमें यह सामर्थ्य है कि वे मुर्दे को भी जीवित कर सकते हैं।

वे हिमालय में ज्यादातर बिहार से काठमांडू जाने वाली सड़क के किनारे नारायणी नदी के तट पर रहते हैं। उनके दर्शन एवं स्मरण मात्र से शान्ति मिलती है। महायोगी पायलट बाबा तथा जापान की महायोगिनी केइको आइकवा उनकी शिष्या हैं। वे अधिकांशतः शान्त एवं अन्तर्मुख रहते हैं। पायलट बाबा तथा जापान की योगिनी केइको आइकवा का समाधि में निष्णात होना, उन्हीं की कृपा का परिणाम है। उनमें अनेकों अलौकिक शक्तियाँ हैं तथा हिमलाय के बड़े-बड़े योगियों का उन्हें साहचर्य प्राप्त है। पायलट बाबा की दीक्षा के समय की कुछ अलौकिक एवं आकर्षक घटनाओं का विवरण पायलट बाबा के ही शब्दों में नीचे प्रस्तुत है—

सूरज संध्या के आंचल से छिटक कर निशा की गोद में जा छिपा। चारों ओर एक झंकृत सन्नाटा छा गया। प्रकृति के कण-कण जैसे सो गये। तारों का समूह टिमटिमाने लगा। नदी की प्रवाहित तरंगें सन्नाटे को यदा-कदा तोड़ने लगीं। एक अद्भुत मनोहारी सौंदर्य चारों ओर छा गया। तभी एक दिव्य वाणी गूँज उठी—"प्रकृति की यह नाट्य-लीला जीव-जगत् रूपी मंच पर प्रतिदिन होती है। यह प्रकृति का नियम है। स्वभाव है। विधान है। कुछेक समर्पण कर जाते हैं। कुछ उदय और अस्त होते हैं। यह एक प्रक्रिया है—सृष्टि की—जो चलती रही है, चलती ही रहेगी। हम कितनी बार आये और गये। आते रहे और जाते रहेंगे। बार-बार दिन और रात का मिलन और बिछुड़न देखेंगे—जन्म और मृत्यु की तरह। पर जो 'आनन्द समर्पण में है', कपिल, उससे पूछो, जो मर कर जीते हैं। जहाँ मृत्यु नहीं होती, जन्म नहीं होता। जीवन शरीर को नहीं त्यागता। अपने आपको

मार कर वह जीता है। जहाँ न जड़ है, न चेतन। न बाह्यमुख है—न अन्तर्मुख। आनन्द ही आनन्द। प्रकृति में लीन, ब्रह्म में समर्पित आनन्द। सुषुप्ति से परे, चेतना से हट कर। न तुरीय है, न जाग्रत, न उद्‌गीथ है, न चिरनिद्रा। केवल आनन्द। परम आनन्द। सत् चित् आनन्द।''

कुछ अनहोनी हो रही थी। किसी अलौकिक स्रोत से कुछ शब्द झंकृत हो रहे थे। नयन अपलक निहार रहे थे। चित् उस पुरुष में रमण कर रहा था। हृदय का स्पन्दन हिमालय की तरह सजग हो रहा था। कान खड़े थे। मन स्थिर था। अहम् विचलित हो गया था। प्रकृति के सम्पूर्ण अवयवं सतर्क खड़े थे। अखण्ड अमिट छाप मस्तिष्क पर पड़ती जा रही थी। अमर योगी बाबा गोरखनाथ जी के मुखारविन्द से अमृत स्वर वाणी की वर्षा हो रही ती। कण-कण सजग था। रोम-रोम स्फुटित था। मैं एकटक उन्हें देखता चला जा रहा था। चित्त उनमें समर्पित, उन्हीं में खो जाना चाहता था। जीवन, मृत्यु, समर्पण, घुलन और मिलन की चाह को चीरता उनका गगनभेदी स्वर पुनः सुनाई पड़ा—''पहले मर जाओ! फिर जीओ!! किसी नवीनता का सृजन मत करना!!!, संस्कारों को मारना! अपने आप को मारना! मर कर ही जीना है!!! वही आनन्द है! परमानन्द है!! नित्यानन्द है!!! जहाँ मन नहीं, बुद्धि नहीं, विवेक नहीं, चिन्तन नहीं, तन नहीं—जगत् नहीं—केवल आनन्द ही आनन्द है! न जन्म है! न मृत्यु!! न वह है! न मैं हूँ!! और न तू!!!'' विचारों के दिव्य प्रवाह उदय हो-हो कर संचार कर रहे थे। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मुझ में आलोकित हो रहा था। स्वयं में स्थापित मैं संज्ञा शून्य-सा उस ब्रह्माण्डीय सृष्टि के मायावी पुरुष को देख रहा था, जो अलौकिक चमत्कारित और विस्मययुक्त असंभव सा लग रहा था। करीब था—पर बहुत दूर! सिमट कर भी सिमट नहीं पाया था!! जान कर भी अनजान था!!! वह मानव था। मैं भी मानव था। पर वह परे था। मैं केवल मानव था। वह तपस्वी मानव था। मैं सबके घेरे में था, वह अपने घेरे में था। मैं खोया था, अपने मन के प्राचीन खण्डहर में। तभी ''ऐ हरिहर'' की शब्द ध्वनि ने चेतना के जगत् में मुझे लाकर पटक दिया।

''ऐ हरि! तुम प्रकृति के सामीप्य में अगम अगोचर के जिस मार्ग पर कपिल को ले जाना चाहते हो, उसका विमोचन मैंने कर दिया। अविराम जीवन के अगम पथ पर अवशेष में जो शेष रह गया है, उन संस्कारों का क्षय और उदय कराकर, मन को निरुद्ध कर, पूर्व संस्कारों का बोध करा कर मैं चलता हूँ। थोड़ी देर के बाद पुनः आ जाऊँगा।

वह महामानव जा रहा था, मैं देख रहा था। तीव्रता से वह लुप्त होता गया और एक प्रकाश अँधेरे में छोड़ता चला गया। वह पुरुष था। एक आदमी—मेरे और आपकी तरह। पर दिव्य था, मुक्त था, अद्भुत था, विचार ही गति थी। इच्छा ही निर्माण थी। स्वेच्छा ही निवास थी। न वह द्वैत था, न अद्वैत, न विशिष्टाद्वैत था, न शुद्ध द्वैत। द्वैताद्वैत से परे वह एक आदमी था। पर वह आदमी होकर भी आदमी नहीं था।

वह चला गया था। केवल प्रकाश रह गया था, जो अँधेरे को मिटा रहा था। आकाश था, प्रकाश था, और धरती के कण-कण सो रहे थे। नदी कल-कल नाद कर रही थी। उनके द्वारा प्रसारित अनबूझ बातें मेरी आत्मा को शीतलता प्रदान कर हिमालय की तरह मुक्त कर गयीं। जिधर वह महापुरुष लुप्त हुआ था, उधर की ओर मैं देखे जा रहा था, पहाड़ ही पहाड़ था। झाड़ियाँ ही झाड़ियाँ थीं। हिम-मण्डित शिखर थे और तरंगित हो रही नदियाँ थीं। चारों तरफ गहन अँधेरा था। केवल प्रकाश की जो रेखा बन गई थी, वही ज्योत्सना मेरे बाहर और भीतर उजाला दिखा रही थी।

मैं दूर-दूर तक कुछ खोज रहा था। प्रकाश का पीछा कर रहा था। मानव, मानव की तुलना करने लगा था। वह भी तो मनुष्य ही है। एक आदमी की तरह, जो आम आदमी होता है। पर वह आदमी से बहुत दूर निकल गया है। आदमी, आदमी ही रह जाता है पर वह अलौकिकता को प्राप्त कर चुका है। कितना श्रेष्ठ, कितना दुर्लभ मनुष्य का जीवन है। सब कुछ करने की—पाने की सामर्थ्य लिये मानव अपने आप से दूर होता जा रहा है। सत् को भुला कर असत् के पीछे दौड़ रहा है। अपने से परे दूसरों की नकल कर रहा है। जी रहा है पर घुट-घुट कर।

राग-द्वेष, अमानवीय कार्यों में लिप्त स्वयं को खोता चला जा रहा है और यहीं एक मानव-मन-तन को कितना महान् अस्तित्व देकर, भौतिकता से परे हट कर, आध्यात्मिक-अलौकिक लोक में इच्छित विहार कर रहा है। सभी मार्ग उसके लिए सहज हो गये हैं। प्रकाश की व्यवस्था उसके शरीर से ही हो रही है। आकाश में वह पक्षियों की तरह गमन कर रहा है। पंच भौतिकता को मिलाकर प्रकाश में बदल रहा है। वायु की तरह बन रहा है। उसकी आवाज वायुमण्डल में विद्युत् तरंगें पैदा कर रही हैं। प्रकृति के सम्पूर्ण तत्त्व उसके सहयोगी बन गये हैं। लोक-लोकान्तर उसका अपना घर बन गया है। मेरा मस्तिष्क उस मानव की दिव्यता का वृत्त बन कर विचार-तरंगों के प्रवाह में मनन करने लगा था। तभी गुरु बोल पड़े—"सोमनाथ में गोरखनाथ थे; जिनका गोरख धन्धा घर-घर का मेहमान है।

अमर योगी गोरखनाथ सभी युगों में कल्पतरु की तरह विद्यमान रह कर अपने विचारों को स्थापित करते रहते हैं, मानव के कल्याण के लिए। इनकी इच्छा ही गति है। सभी युगों में इनका अस्तित्व बना रहता है। बार-बार ये अपने शरीर को लुप्त कर जन्म ले लिया करते हैं, और पुनः वैसा ही रूप बना कर भ्रमण करने लगते हैं। हिमालय की कन्दराओं में पड़े रह कर ये विश्व को आध्यात्मिक चेतना और योग का सन्देश देते रहते हैं। यदा-कदा अपने अस्तित्व का बोध करा कर अपने शिष्यों को माया के कंचुक में लिपटे मानव के बीच छोड़ देते हैं। इनकी वाणी अमृत बरसाती है। इनकी बोली सम्पूर्ण सम्पदा की निधि है। इनके खप्पड़ में सम्पूर्ण जगत् के विनाश और उत्पत्ति की क्षमता है। ऋद्धियों-सिद्धियों से परे हट कर स्वयं आत्म-ब्रह्म में समर्पित, ब्रह्ममय होकर, ये एक शक्ति बन गये हैं। इनका अपना इतिहास है। भारत के कण-कण में यह नाम व्याप्त है। पर बड़े ही भाग्यशाली श्रेष्ठ संस्कारों से युक्त व्यक्तियों को ही ये मिल पाते हैं, और, जिसे ये मिल गये, उसका मानव जीवन पाना सफल हो जाता है। वह आदमी पुनः पीछे मुड़कर हाड़-मांस-रक्त से युक्त सौंदर्य का प्रतीक बना, प्रेम और घृणा दोनों से युक्त मानव शरीर के रहस्यों को जान लेता है। ऐसे तो ये साधारणतया भ्रमण में रहते हैं। नारद अपनी झोली लेकर वीणा की धुन पर 'नारायण-नारायण' की रट लगाये रहते हैं और गोरखनाथ चिमटे के साथ 'अलख-निरंजन' में मस्त रहते हैं। आज का आम व्यक्ति भौतिक जगत् के चहल-पहल में मस्त हो कर घूम रहा है। अणु युग की रफ्तार में आदमी अहंकार से भर गया है। विज्ञान के गागर को ही अपने ज्ञान का सागर समझ बैठा है। उसके आस-पास में क्या हो रहा है, उसे देखने का समय नहीं मिला करता है। जिस कारण से आज कोई इन श्रेष्ठ महापुरुषों को पहचान नहीं पाता और वे महान् आत्मायें बड़े ही सहज तरीके से भ्रमण कर प्रकृति का आनन्द लेती हैं, और धरती के जीवों से सम्बन्धित संस्कारों को मिटाती हैं। आओ गुफा में चलते हैं। थोड़ी ही देर के बाद वह भी आने वाले हैं, खिचड़ी के लिए अलख जगाने गये हैं।

माँ से भिक्षा

मैं सम्मोहित, मन्त्र-मुग्ध उनकी वाणी के प्रभाव में बाबा के पीछे-पीछे चल पड़ा। नदी का प्रवाह काफी तेज था। गुफा नदी के पार थी, थोड़ी ही दूर पर। गुफा में पहले से ही आसन लगा था, तीन महात्माओं के रहने का। मेरे उपयोग के सभी कपड़े भी पहले से रखे हुए थे। गुफा का मुँह बहुत छोटा था। परन्तु अन्दर २८ व्यक्तियों तक का रहने का साधन था। भिन्न-भिन्न तरह के आसन, बाघ-चर्म,

मृगछाला, त्रिशूल, डमरू और खप्पड़ रखे हुए थे। तरह-तरह के पहनने के वस्त्र फैले हुए थे, कहीं चोला था, तो कहीं जैकेट, कुर्ता तो कहीं बाघ-चर्म का ही पहनावा लटका था। मैं बाबा द्वारा बताये आसन पर बैठ गया।

मेरा आसन बीच में था। मेरे सामने शिव का बड़ा सुन्दर लिंग स्थापित था, ताँबे के कलश से बूँद-बूँद पानी टपक रहा था। शिवलिंग त्रिनेत्र शोभायमान था। मस्तक पर कुछ फूल अपने भाग्य को सराह रहे थे। मैं गुफ़ा की सभी वस्तुओं का गहरा अध्ययन कर रहा था। तभी हरी बाबा ने शिवलिंग पर से एक फूल उठा कर मेरे सिर पर रख दिया। मैं धीरे-धीरे एक गहन अँधेरे में खोता चला गया। मेरे मनरूपी सागर का उथल-पुथल और सम्पूर्ण कौतूहल समाप्त हो गया। शरीर की सारी गति ऊर्ध्व हो गई। विद्युत तरंगें रह-रह कर उठने लगीं। मैं और शरीर का अन्तर समझ में आने लगा। शरीर शून्य होता गया। आँखें बन्द होने लगीं। दूर-दूर तक जगत् की हर वस्तु में चेतना काम करती नजर आने लगी। पेड़-पौधों की संचार-गतियाँ दृष्टिगोचर होने लगीं। पक्षियों की आवाजें समझ में आने लगीं। सर्प, कीट, पतंगें आदि की विचार-तरंगें प्रभावित करने लगीं। सम्पूर्ण जगत् क्रियाशील दिखाई पड़ा। बैठे-बैठे ही सब कुछ दिखाई पड़ने लगा। जलचर, थलचर, नभचर तथा मानव और पशु-पक्षियों के जीवन का रहस्य समझ में आने लगा। मैंने देखा-मेरा शरीर मुझसे अलग पड़ा है। एक प्रकाश की सूक्ष्म रेखा सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास कर रही है। पर प्रयास बार-बार बेकार जा रहा है। कुछ ही दूरी पर हिमशिखरों के बीच एक गुफा से दूसरी तरफ दो और शरीर पड़े हैं। वे भी जड़ हैं। उनके शरीर के अंग-प्रत्यंग दिखाई पड़ रहे हैं। हड्डियाँ ही हड्डियाँ हैं।

तभी वही महापुरुष आता दिखाई पड़ा। वह गुफा में प्रवेश कर गया। एक किनारे बैठ गया, और अपने शरीर को छोड़ कर मेरे पार्थिव शरीर में प्रवेश कर गया। मैं सब कुछ देख रहा था। पर विवश था। मुझमें कुछ करने की क्षमता नहीं थी, कुछ करना चाह रहा था। अपने शरीर के लगाव को मैं महसूस कर रहा था। पर सब कुछ शून्य था। मैं मात्र दर्शक बन गया था, इस प्रकृति के चमत्कारपूर्ण कार्यों का या शक्ति का। मेरा शरीर अब उठकर चलने लगा था। उसमें एक दिव्य महापुरुष की आत्मा काम करने लगी। वह मेरे शरीर को लेकर तीव्र गति से चल पड़ा। बगल में झोली लटका ली, एक हाथ में चिमटा और दूसरे हाथ में खप्पड़ लिये अलख जगाने लगा। हजारों मील की दूरी पल भर में ही तय कर ली थी। मैं भी पीछे-पीछे था। सभी कुछ देख रहा था। वह मेरे शरीर को आकाश के मार्ग से ले जा रहा था।

सारी दुनिया मेरी नजर के समक्ष तय हो रही थी। मैं भी अपने शरीर के पीछे-पीछे जा रहा था। मैं था, पर मेरा शरीर मेरे साथ नहीं था। मेरा शरीर था, पर मैं उस शरीर में नहीं था।

विशाल बरगद का पेड़, उसके नीचे कुँआँ, सामने एक बड़ा मैदान और उस मैदान में लगा हुआ एक बड़ा फाटक। लंबी-ऊँची दीवारें और उस फाटक पर प्राचीन इतिहास की गाथाएँ अंकित थीं। सभी कुछ जाना-पहचाना सा लग रहा था। वहाँ का कण-कण मुझे अपनी ओर खींच रहा था। वह ऊपर की ओर देख रहा था, तो कभी उस फाटक की ओर। दरवाजा खुला था। अभी चलह-पहल थी। सभी कुछ अपना ही था, पर मैं ही नहीं था। मेरी विवशता को योगिराज देख रहा था। उसने खप्पड़ संभाला और फाटक पर जाकर अलख जगा दिया। छोटे-छोटे बच्चे योगी के पीछे लग गये। भिक्षा लेकर एक औरत बाहर निकली और योगी को देखते ही रोती हुई अन्दर भाग गयी। पूरे घर में कुहराम मच गया। सभी बूढ़े-बच्चे योगी को देखने दौड़ पड़े। सभी फूट-फूट कर रोने लगे। औरतें बिलखने लगीं। कुछ औरतें योगी को खींच कर घर में ले जाना चाहती हैं। पर उसे कोई टस से मस नहीं कर पाया। एक अजीब सा माहौल पैदा हो जाता है। चारों तरफ कुहराम ही कुहराम छा गया। गाँव के सभी लोग दौड़ पड़े। मैदान धीरे-धीरे औरतों, मर्दों और बच्चों से भर गया। प्रकाश की व्यवस्था लोगों ने कर ली। सभी उचक-उचक कर योगी को देखने लगे। सभी की आँखों में आँसू थे। अजीबो-गरीब स्थिति वहाँ पैदा हो गई। उस माहौल में भी वह योगी अडिग खप्पर फैलाये भिक्षा माँग रहा था। सभी लोग बिलख रहे थे। श्रद्धा, ममता, स्नेह और आदर्श। मैं सभी को पहचान रहा था। संग के साथी, उस मकान का एक-एक कोना और उस माँ को जिसकी गोद में मेरा बचपन बीता था। जिसके आँगन में पैदा होकर खेला था। उस वट-वृक्ष की हर डाली से मैं परिचित था, जिस पर चढ़कर लुकाछिपी खेला करता था। भाई-बहनों का साथ मिला था। दोस्तों के साथ खेला था। वहाँ गाँव की हर गली में मेरा नाम अंकित था—जहाँ मेरा नटखट बचपन बीता था। और वे सभी लोग मुझे उस हालत में देखकर स्नेह में बिलख रहे थे। पूछ रहे थे, "तूने यह क्या किया"? पर योगी खड़ा था पत्थर के फूल की तरह नाम मात्र का भी उसमें कंपन नहीं हो रहा था। उसके संतुलन में कोई परिवर्तन नहीं था। मैं सब कुछ देख रहा था। पर मैं कर भी क्या सकता था। शरीर होते हुए भी मैं उसमें नहीं था। जिसे सामाजिक उपलब्धियाँ, रिश्ते-नाते अपने बन्धन में जकड़ लेते हैं। सब अपने थे—पर कोई नहीं था मेरे लिए। मैं उसका अपना था पर योगी का

कोई नहीं था। देह धारण करने वाला अडिग भिक्षा के लिए अलख जगा रहा था। ममता पीछे मुड़कर भीतर जाती है और आंचल में भर कर चावल-दाल लेकर आती है। योगी के ऊपर थोड़ा अक्षत फेंक कर आशीर्वाद देती है, "युग-युग जिओ मेरे लाल"। फिर योगी की परिक्रमा करके उसके खप्पड़ में खिचड़ी डाल देती है।

सभी भौंचक्के से देख रहे हैं। भिक्षा पाकर योगी चल देता है। तभी ममता फूट-फूट कर रो देती है और दौड़ कर योगी के सामने खड़ी होकर आंचल फैला देती है।—"मुझे एक बार मेरे लाल से मिला दो, मैं उसे केवल देखना चाहती हूँ। योगी। तुम्हें पहचान गई हूँ। तुम वह नहीं हो, जिसे मैंने पैदा किया था। मैं जानती हूँ, वह मेरा बेटा है, बाद में योगी है। एक बेटा अपनी माँ को नहीं भुला सकता, चाहे वह कितना ही विराट् चिन्तन करने लगा हो। योगी, तुम भी मुझे यह भिक्षा दे दो और वादा कर जाओ कि एक बार उसे अवश्य भेजोगे। तुम समर्थ हो। तुम्हारे सामीप्य में पल कर वह महान् योगी बने, ममता, मोह, स्नेह, माया के बन्धन को ठुकरा कर मानवता के लिए जिये, तुम यह सब मेरा आशीर्वाद उसे कह देना। जाओ, योगी, अब तुम जाओ। तुम जैसे महान् आत्माओं को पाकर, यह मन, यह भूमि, यह समाज सब धन्य हैं। माँ बनकर, मैं भी अपने को सौभाग्यशाली समझती हूँ। योगी, जाओ उसे कह देना—ममता सदैव प्रेरणा देती है। साधक को साधना देती है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'।"

योगी उसके आंचल में एक मुट्ठी भस्म डाल देता है। ममता उसे माथे लगा लेती है। सब कुछ राख ही तो है। वह हँसने लगती है। कैसा गोरख धन्धा है, इन योगियों का। अलख की झोली और पलक का खजाना लिये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपना घर बना लेते हैं। शिव तू निराला है। तू शव भी है और शिव भी। गाँव के लोग देखते ही रह जाते हैं। योगी सभी को बिलखते छोड़ कर पल में ही गुफा में आ जाता है। मेरे शरीर को त्याग कर वह अपने शरीर को धारण करता है। मैं इन सारे क्रिया-कलापों को देख रहा था। तभी मैं भी धीरे-धीरे हरी बाबा का स्पर्श पाकर जगत् की व्यावहारिक स्थिति में आने लगा। गोरखनाथ जी की हृदय-स्पर्शी चिर-परिचित आवाज सुनाई पड़ने लगी। "अब आ जाओ, उपलब्धियों के पूर्व ही जगत् के अतुल्य बन्धन से मुक्त हो चुके हो।"

मैं पूर्ण चेतना-जगत् में प्रवेश कर दोनों दिव्य विभूतियों को देख रहा था, आश्चर्यचकित होकर। बाबा गोरखनाथ जी के हाथ में वही खप्पड़ था, जिसमें खिचड़ी भरी थी। बगल में झोली सम्पूर्ण माया-जगत् के वोझ को समटे लटकी हुई थी। ओठों पर कमलवत् मुस्कान बिखर रही थी। मैं बार-बार श्रद्धा से

विह्वल होकर उन्हें नमस्कार कर रहा था। गोरखनाथ जी ने झुक कर मुझे गले लगा लिया। मैं उनकी आजानु भुजाओं के बीच चिपकता चला गया। "सोमनाथ, मैंने ठीक ही तो किया। तुमने सब कुछ देखा, महसूस किया। तुम्हारे परिवार-परिसर के समूह में ममता को, जाकर बिलखाया, हँसाया। बहनों को छाती पीटने पर बाध्य कर दिया। भाइयों को दरवाजे से लग कर अचंभित होकर चिन्तन में डाल दिया। परिचित समुदाय में एक स्पर्धा का बीज बोकर, भिक्षा मैं तुम्हारे शरीर के माध्यम से माँग लाया। मैं था, तू था। मैं तुझमें विलीन हो गया था, तू मुझमें। वहाँ कौन था? तू या मैं, अद्वैत की परिधियों में प्रवेश करने के लिए द्वैताद्वैत को छोड़ देना पड़ता है।"

"नश्वर लोक की मोहमाया के जाल से छूट कर ही अपने को परमात्मा से जोड़ा जाता है। जो एक बार टूट गया, वह नहीं जोड़ा जा सकता। कितना भी जोड़ो गाँठ पड़ ही जाएगी। उधर तुम टूट गये, इधर तुम जुड़ गये। यही है मर जाना और मर कर फिर जी जाना। सांसारिक उद्यान की अव्यावहारिक वाटिका रूपी फूल से तुम तोड़ लिये गये। अब अपने आप से जुड़ जाओ—जहाँ केवल जीना है।"

औघड़नाथ को सत्पथ पर लाना

हरी बाबा ने धूनी पर खिचड़ी पकानी शुरू की। बाबा गोरखनाथ के साथ मैं नदी के बहाव की ओर चल दिया। कंकड़ पत्थरों के जमघट को पार करते हुए, चट्टानों के बीच टहलते, नदी के किनारे-किनारे चलते रहे। थोड़ी ही दूर से दीपक की तरह बहुत से प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहे थे। कुछ ही समय के उपरान्त हम दोनों एक बड़े मैदान में पहुँच गये। बहुत बड़ा रेत का मैदान था। नदी का बहाव टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था। दीपक का प्रकाश करीब होता जा रहा था। हम धीरे-धीरे वहाँ पहुँच गये। रेत के ऊपर बहुत बड़ा अजगर पड़ा था उसके चारों तरफ अनेक दीपक जल रहे थे। सुगन्ध चारों तरफ तेजी से फैल रही थी। वह अजीब सुगन्ध थी। लगता था कुछ ही क्षणों में हम बेहोश होकर गिर जायेंगे। अजगर के मुख से सीटी की आवाज आ रही थी। जब वह साँस लेता था, तो रेत उड़ने लगती थी। वह हमें ही देख-देखकर सीटी मार रहा था, पर उसका कुछ भी प्रभाव हम दोनों पर नहीं पड़ रहा था। रह रहकर अजगर क्रोधित हो रहा था। पर वह विवश था। गोरखनाथ जी मुस्कुरा रहे थे, रह रहकर बोल पड़ते थे। "बस-बस बहुत हो गया। ज्यादा कर्त्तव्य-परायणता मत दिखाओ, नहीं तो दीपक बुझा दूँगा।" अजगर

कोई नहीं था। देह धारण करने वाला अडिग भिक्षा के लिए अलख जगा रहा था। ममता पीछे मुड़कर भीतर जाती है और आंचल में भर कर चावल-दाल लेकर आती है। योगी के ऊपर थोड़ा अक्षत फेंक कर आशीर्वाद देती है, "युग-युग जिओ मेरे लाल"। फिर योगी की परिक्रमा करके उसके खप्पड़ में खिचड़ी डाल देती है।

सभी भौंचक्के से देख रहे हैं। भिक्षा पाकर योगी चल देता है। तभी ममता फूट-फूट कर रो देती है और दौड़ कर योगी के सामने खड़ी होकर आंचल फैला देती है।—"मुझे एक बार मेरे लाल से मिला दो, मैं उसे केवल देखना चाहती हूँ। योगी। तुम्हें पहचान गई हूँ। तुम वह नहीं हो, जिसे मैंने पैदा किया था। मैं जानती हूँ, वह मेरा बेटा है, बाद में योगी है। एक बेटा अपनी माँ को नहीं भुला सकता, चाहे वह कितना ही विराट् चिन्तन करने लगा हो। योगी, तुम भी मुझे यह भिक्षा दे दो और वादा कर जाओ कि एक बार उसे अवश्य भेजोगे। तुम समर्थ हो। तुम्हारे सामीप्य में पल कर वह महान् योगी बने, ममता, मोह, स्नेह, माया के बन्धन को ठुकरा कर मानवता के लिए जिये, तुम यह सब मेरा आशीर्वाद उसे कह देना। जाओ, योगी, अब तुम जाओ। तुम जैसे महान् आत्माओं को पाकर, यह मन, यह भूमि, यह समाज सब धन्य हैं। माँ बनकर, मैं भी अपने को सौभाग्यशाली समझती हूँ। योगी, जाओ उसे कह देना—ममता सदैव प्रेरणा देती है। साधक को साधना देती है। 'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'।"

योगी उसके आंचल में एक मुट्ठी भस्म डाल देता है। ममता उसे माथे लगा लेती है। सब कुछ राख ही तो है। वह हँसने लगती है। कैसा गोरख धन्धा है, इन योगियों का। अलख की झोली और पलक का खजाना लिये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड को अपना घर बना लेते हैं। शिव तू निराला है। तू शव भी है और शिव भी। गाँव के लोग देखते ही रह जाते हैं। योगी सभी को बिलखते छोड़ कर पल में ही गुफा में आ जाता है। मेरे शरीर को त्याग कर वह अपने शरीर को धारण करता है। मैं इन सारे क्रिया-कलापों को देख रहा था। तभी मैं भी धीरे-धीरे हरी बाबा का स्पर्श पाकर जगत् की व्यावहारिक स्थिति में आने लगा। गोरखनाथ जी की हृदय-स्पर्शी चिर-परिचित आवाज सुनाई पड़ने लगी। "अब आ जाओ, उपलब्धियों के पूर्व ही जगत् के अतुल्य बन्धन से मुक्त हो चुके हो।"

मैं पूर्ण चेतना-जगत् में प्रवेश कर दोनों दिव्य विभूतियों को देख रहा था, आश्चर्यचकित होकर। बाबा गोरखनाथ जी के हाथ में वही खप्पड़ था, जिसमें खिचड़ी भरी थी। बगल में झोली सम्पूर्ण माया-जगत् के बोझ को समेटे लटकी हुई थी। ओंठों पर कमलवत् मुस्कान बिखर रही थी। मैं बार-बार श्रद्धा से

विह्वल होकर उन्हें नमस्कार कर रहा था। गोरखनाथ जी ने झुक कर मुझे गले लगा लिया। मैं उनकी आजानु भुजाओं के बीच चिपकता चला गया। "सोमनाथ, मैंने ठीक ही तो किया। तुमने सब कुछ देखा, महसूस किया। तुम्हारे परिवार-परिसर के समूह में ममता को, जाकर बिलखाया, हँसाया। बहनों को छाती पीटने पर बाध्य कर दिया। भाइयों को दरवाजे से लग कर अचंभित होकर चिन्तन में डाल दिया। परिचित समुदाय में एक स्पर्धा का बीज बोकर, भिक्षा मैं तुम्हारे शरीर के माध्यम से माँग लाया। मैं था, तू था। मैं तुझमें विलीन हो गया था, तू मुझमें। वहाँ कौन था? तू या मैं, अद्वैत की परिधियों में प्रवेश करने के लिए द्वैताद्वैत को छोड़ देना पड़ता है।"

"नश्वर लोक की मोहमाया के जाल से छूट कर ही अपने को परमात्मा से जोड़ा जाता है। जो एक बार टूट गया, वह नहीं जोड़ा जा सकता। कितना भी जोड़ो गाँठ पड़ ही जाएगी। उधर तुम टूट गये, इधर तुम जुड़ गये। यही है मर जाना और मर कर फिर जी जाना। सांसारिक उद्यान की अव्यावहारिक वाटिका रूपी फूल से तुम तोड़ लिये गये। अब अपने आप से जुड़ जाओ—जहाँ केवल जीना है।"

औघड़नाथ को सत्पथ पर लाना

हरी बाबा ने धूनी पर खिचड़ी पकानी शुरू की। बाबा गोरखनाथ के साथ मैं नदी के बहाव की ओर चल दिया। कंकड़ पत्थरों के जमघट को पार करते हुए, चट्टानों के बीच टहलते, नदी के किनारे-किनारे चलते रहे। थोड़ी ही दूर से दीपक की तरह बहुत से प्रकाश दृष्टिगोचर हो रहे थे। कुछ ही समय के उपरान्त हम दोनों एक बड़े मैदान में पहुँच गये। बहुत बड़ा रेत का मैदान था। नदी का बहाव टेढ़ा-मेढ़ा हो गया था। दीपक का प्रकाश करीब होता जा रहा था। हम धीरे-धीरे वहाँ पहुँच गये। रेत के ऊपर बहुत बड़ा अजगर पड़ा था उसके चारों तरफ अनेक दीपक जल रहे थे। सुगन्ध चारों तरफ तेजी से फैल रही थी। वह अजीब सुगन्ध थी। लगता था कुछ ही क्षणों में हम बेहोश होकर गिर जायेंगे। अजगर के मुख से सीटी की आवाज आ रही थी। जब वह साँस लेता था, तो रेत उड़ने लगती थी। वह हमें ही देख-देखकर सीटी मार रहा था, पर उसका कुछ भी प्रभाव हम दोनों पर नहीं पड़ रहा था। रह रहकर अजगर क्रोधित हो रहा था। पर वह विवश था। गोरखनाथ जी मुस्कुरा रहे थे, रह रहकर बोल पड़ते थे। "बस-बस बहुत हो गया। ज्यादा कर्तव्य-परायणता मत दिखाओ, नहीं तो दीपक बुझा दूँगा।" अजगर

में और तीखा पन आ जाता है। और सीटी जोर-जोर से बजाने लगता है। तभी हँसते हुए बाबा हाथ से आसमान की ओर एक वृत्त बनाते हैं और वृत्त में सीधी लकीर खींच कर किनारे पर काट देते हैं। ऐसा करते ही अजगर के कार्य में कमी आ जाती है और तीन दीपक बुझ जाते हैं। सिर के पास के दीपक के बुझते ही अजगर एकदम शिथिल पड़ गया। हम दोनों वहाँ से आगे बढ़े। मिनटों में एक झोपड़ी के करीब पहुँच गए। नदी के किनारे वह छोटी सी झोपड़ी बनी थी। झोपड़ी में मंद-मंद लौ के साथ धूनी जल रही थी। यदा-कदा अग्नि भड़क पड़ती थी। एक तेरह साल की कन्या बेहोश पड़ी थी। वह निर्वस्त्र थी। उस कन्या के शरीर से मुँह लगाकर एक औघड़ रक्त पी रहा था। पशुओं की तरह रह रहकर डकार रहा था। मुँह एकदम खून से लाल हो गया था। कभी-कभी सिर उठा कर इधर-उधर देख रहा था। उसकी आँखों से अंगारे बरस रहे थे। हम दोनों दरवाजे पर जाकर खड़े हो गये। हमारी छाया उसके ऊपर जाकर पड़ी। वह हड़बड़ा कर खड़ा हो गया और लपक कर अपने त्रिशूल को उठा लिया। क्रोध से काँपने लगा। आँखों में भय समा गया था। वह असमञ्जस में पड़ा, कभी इधर, कभी उधर अपनी जगह पर बेचैनी महसूस कर रहा था। तब तक गोरखनाथ बाबा खिलखिला कर हँस पड़े।

वह औघड़ दौड़ कर बाबा के पैरों पर नाक रगड़ने लगा। फिर फूट-फूट कर रो पड़ा। करुणा और दर्द से वह बिलख रहा था। वह बाबा के पैरों से चिपकता जा रहा था, तभी गोरखनाथ जी ने उसे उठाकर कहा—"क्यों औघड़नाथ, अब यही करता फिरेगा, बहुमूल्य समय को नष्ट करने से क्या फायदा? यह कोई उपासना है, शिवत्व का बोध प्राप्त करने के लिए। मानव जीवन तपस्या के बाद प्राप्त होता है। माँ का कितना कठोर तप होता है, आदमी को जन्म देने के लिए और तुम लोग उस माँ की तपस्या के बदले में उसका रज पी रहे हो। माँ नारी होती है और हर नारी माँ का स्वरूप लिये होती है। माँ की तरह तुम भी अपनी तपस्या का फल प्राप्त करने के लिए प्रतीक्षा क्यों नहीं करते। क्या यही मार्ग रह गया है, आत्मबोध के लिए? अपने शरीर से अलग दूसरों में तुझे क्या मिलेगा? अपने में क्यों नहीं खो जाता? रज के बदले अपने वीर्य को क्यों नहीं ऊर्ध्व करता? जन्म से परे, मृत्यु को टाल देने के लिए किसी भौतिक माध्यम की आवश्यकता नहीं। कला को कला में समर्पित कर प्राप्त करो। उठ! जा अपने संस्कारों से प्रतिपादित अपने लक्ष्य के भेदन हेतु भाग जा और सुन, इस कन्या को पवित्र करके इसके ठिकाने पर पहुँचा दे। अस्पृश्यता या सामाजिक अवहेलना का यह शिकार न बने,

इसका ध्यान रखना। जीवन वाटिका में खिलने के पहले ही टूट न जाए। यदि यह भटक गई और टूट कर बिखर गई, नारीत्व खो गया तो समझना, औघड़ तुम भी खो गये। एक बार जब नारी बिखर जाती है तो वह मनुष्य के लिए अभिशाप बन जाती है। स्वयं तो डूबती है, पुरुष को भी डुबा देती है। केवल एक बार कई एक जन्मों के भटकाव के लिए काफी है। तुम, औघड़ नाथ डूब जाने से बचना चाहते हो, तो इसे इसका बोध न होने देना। तुम्हारी तपस्या फलीभूत होगी और यह बालिका भी अपने रास्ते पर चलती रहेगी।''

औघड़ खड़ा था। अब उसकी आँखों में तेज था। जटायें जमीन को स्पर्श कर रही थीं। वह भाव विभोर होकर पुनः गोरखनाथ जी के पैरों पर गिर पड़ा। वह तृप्त था। उसकी इच्छाएँ पूर्णता को प्राप्त कर गयी थीं। अपनी साधना में सफलता प्राप्त कर चुकने पर ही वह गोरखनाथ जी का दर्शन कर पाया था। वह कृतज्ञ होकर बहुत कुछ कहना चाहता था, पर प्रकट नहीं कर सका। वह श्रद्धापूर्ण शब्दों में बोला, ''महाराज, आपकी जैसी आज्ञा। मैं तो पूर्ण हो चुका, आपकी कृपा से। जींवन के जन्म-मरण की परिस्थितियों में भटकता आप तक पहुँचने के लिए प्रयत्नशील रहा। शिवत्व आप से अलग कहाँ है।

माया को उपदेश

''आ-जा रे! और सब ठीक रहेगा। समर्पण से हट कर परित्यक्त मार्ग पर चलना'', कहते हुए गोरखनाथ जी वहाँ से लौट पड़े। मैं भी मुड़ कर पीछे-पीछे चल दिया। मैदान में कुछ दीपक वैसे ही जल रहे थे। अजगर की जगह एक कापालिक तपस्वी ने ले रखी थी। नशीली आँखें तृप्त नजर आ रही थीं। स्थूल शरीर पर कुछ भी नहीं था। थोड़ी दूरी पर त्रिशूल गड़ा था। कुछ खप्पड़ और नर मुंड पड़े थे। वह उद्विग्नता से उठकर बाबा गोरखनाथ जी को प्रणाम कर बैठ गया। वह मूक बना रहा। तभी एक अति सुन्दर युवती हाथ में त्रिशूल लिये गेरुआ वस्त्र धारण किये, जटा जूट बाँधे, सामने खड़ी हो गई। उसके हाथ में वाराह देवता की मूर्ति थी। वह किंकर्तव्य विमूढ़-सी कापालिक और गोरखनाथ जी के बीच खड़ी हो गई।

''ओह! माया सदियों तक तपस्या के उपरान्त भी तुम भटक रही हो। साधना की पूर्णता को प्राप्त कर भी तुम अधूरी हो, मृगतृष्णा के सदृश। तुम्हारी इच्छाएँ भटक रही हैं। मैंने तुम्हें सम्राट हर्षवर्द्धन के महल में देखा था। कृष्णवर्द्धन की तुम पत्नी थीं। राज्य के सारे ऐश्वर्य सुख को तिलांजलि देकर कृष्णवर्द्धन के अगाध

प्रेम को ठुकराकर, तुम पाटलिपुत्र में गंगा के किनारे टहलने लगीं, तुम्हारा योगिनी रूप साधकों के लिए वरदान बन गया था। पाटलिपुत्र से विन्ध्याचल की पहाड़ियों तक तुम्हारी दुंदुभि बजने लगी थी। अघोरेश्वर भैरवनाथ की तुम सहयोगिनी बन गयी थीं। कापालिक-साधना से हटकर उसने तुम्हें साधना का मार्ग बना लिया था। गंगा के कछार के साधकों ने तुझे उठा दिया और तुम बहुत आगे निकल गई। मैंने अनेकों बार तुझे गंगा के किनारे विंध्य की घाटियों में देखा था। तुम आज तक अतृप्त भटकती रही हो। भैरवनाथ भी अधूरा ही रहा। वाराह देवता ने अघोर की ओर ध्यान नहीं दिया। शक्तिस्वरूप नारी के बिना भैरवनाथ की उपासना अधूरी रही। कैसा संयोग था। तुम पुरुष के बिना अधूरी हो और भैरवनाथ नारी के बिना। अतृप्त वासनाओं को तृप्त करने के लिए तुम और भैरवनाथ सन्निकट रहकर भी बहुत दूर हो। तुम एक-दूसरे के पूरक बन सकते थे। पर बाणभट्ट ने आकर तुम दोनों को दूर कर दिया। तू कृष्णवर्द्धन को त्याग कर भी उसे भुला नहीं पाई, भैरवनाथ को पाकर भी उसे अपना नहीं पाई। तुम सबको अपने में समेट लेना चाहती थीं। तुम हर्षवर्द्धन और कृष्णवर्द्धन के साम्राज्य पर छा जाना चाहती थीं। तुम अपनी तपस्या को भैरवनाथ की सम्पूर्ण साधना को क्रान्ति में बदल देना चाहती थीं। तुममें अपार क्षमता हो गई थी, फिर भी तुम भीतर से टूटी हुई थीं। तुमने क्या-क्या नहीं किया। कृष्णवर्द्धन और राज्यश्री के लिए तुम चाहतीं तो इतिहास तुम्हारे त्याग का गुणगान करता, पर तुमने अपनी चाह के लिए इतिहास को नहीं बनने दिया। सभी चले गये। हर्षवर्द्धन नहीं रहा। कृष्णवर्द्धन अपनी यादों में खोया हुआ डूब गया। पाटलिपुत्र का साम्राज्य समाप्त हो गया। पर तुम आज तक चलती आ रही हो। योगिनीं अब तुम गंगा के किनारे से हट कर विंध्य की घाटियों को छोड़कर हिमालय की कन्दराओं की शरण में आकर किस शक्ति को खोज रही हो? वह गंगा का तट था। यह नारायणी का किनारा है। कितनी शताब्दियाँ और कितने परिवर्तन तुमने देखे हैं। वह सब इतिहास बन गया है। तुम्हारे साथ के सभी कापालिक, बाराह देवता के वे स्वर्ण मन्दिर सब ध्वस्त हो गये। कृष्णवर्धन अनेकों बार जन्मा और मरा। गंगा ने भी अपनी धारा में परिवर्तन किया। बाराह देवता ने तंत्र साधकों को तारा, कामाक्षी बंगलामुखी आदि शक्तियों के हाथों में दे दिया। दिशा और काल के अनुकूल राष्ट्र में परिवर्तन हो गया। पाटलिपुत्र अब पटना बन गया। तब के वैभव का प्रतीक भवन खण्डहर बन कर गंगा की गोद में समा गया और अभी तक तुम अविराम जीवन यात्रा में वैसे ही चल रही हो ! गंगा के किनारे और विंध्याचल पर्वत की घाटियों में जीवन को हजारों वर्षों तक गुजारने के बाद हिमालय में आ गई हो। तुम्हारी इच्छा ही गति बन गई है। स्वेच्छाचारी जीवन जी

रही हो, जन्म और मृत्यु को अपने अनुकूल करके, शरीर को कल्पतरु की तरह अमर कर चुकी हो, पर अतृप्त इतिहास को मिटाकर सहजता में क्यों नहीं आ जातीं? भैरवनाथ ने तुम्हें रास्ता दिया। पर आज तक निरन्तर जीवन प्रवाह में तुम दोनों अधूरे ही भटक रहे हो। इन नर-मुंडों का त्याग करो। भैरवनाथ, कापालिक साधना का युग रसातल को जा रहा है। पंच मकार अपना घर ढहा चुका है। बाराह देवता की उपासना हजारों वर्ष पूर्व बौद्ध अनुयायियों ने मिटा दी। जहाँ बुद्ध भगवान् को नहीं मानते थे, वहाँ लोगों ने बुद्ध को ही भगवान् बना दिया। बुद्ध 'अहिंसा परमो धर्मः' को श्रेय देते थे। अब तन्त्र साधकों ने बुद्ध को तान्त्रिक साधना का केन्द्रबिन्दु बना दिया। अब वहाँ बुद्ध के समक्ष सब कुछ हो जाता है।

माया, अब तुम दोनों अपने विचारों में परिवर्तन करो। अब कल का भारत नहीं है। आज का भारत और है। इसने भी अनेकों को दफना कर अपना नवीन इतिहास लिखना शुरू किया है। तुम भी बदलो। ये नर-मुंड और खोपड़ी अब काम नहीं आयेंगे। कल लोग सौंदर्य के उपासक थे। आज सौंदर्य बिकता है। कल के सौंदर्य में अभिलाषाओं के अनन्त स्वप्न झिलमिलाते थे, आज का सौंदर्य चंचल है। इसकी रक्षा करनी पड़ेगी नहीं तो सब कुछ काम की अग्नि में भस्म हो जायेगा।

माया, तुम तो सदैव माया हो। तुम्हारा प्रपंच ही माया है। यह जगत् भी माया है और सारे स्वरूप भी माया हैं। जहाँ भी तुमने चाहा अपनी माया को फैलाया। हम तो दूर रहे तुम्हारी योग माया से। तुम ही जानो अपनी माया को, गोरख तो चला।''

हम दोनों चल दिए। अपनी डफली अपने राग में मस्त। माया स्तब्ध खड़ी थी। भैरवनाथ नर-मुंडों को फेंक रहे थे। नारायणी का जल उसे समेट कर बह रह था। दीपक उसी तरह जल रहे थे। मैंने पीछे मुड़ कर देखा तो माया खिल-खिलाकर हँस पड़ी। लगा चारों ओर बिजली कौंध गयी हो। उसके गले में हीरों-पन्नों से युक्त रुद्राक्ष की माला से चमक आ गयी थी। माया अपने त्रिशूल को हाथ में उठाकर 'जय बाराह देवता' बोल रही थी। बाबा गोरखनाथ जी ने भी पीछे मुड़कर देखा और मेरी बाँह पकड़ कर रोक लिया।

''माया जीवन के हर वसन्त में कोयल कूकती है। पतझड़ के बाद हरियाली आती है। आम-महुआ गदराते हैं। कटहल अपने यौवन में आता है। नदियाँ घट जाती हैं। झरने सूखने लगते हैं। आदमी प्यासा हो जाता है। और माया, तुम अतृप्त कामनाओं से भरकर अगम की राह में भटकने लगती हो।

अग्नि की दाहकता और चन्द्र की शीतलता—दोनों, माया, तुझमें घर बना लेते हैं। तब तुम महात्रिपुर सुन्दरी की तरह लगने लगती हो और काम तुम्हें बेचैन कर देता है।

माया, तुम्हें अपने आप में से ममत्व और परत्व की भावनाएँ समाप्त करनी चाहिए, तब कहीं जाकर वासनाएँ समाप्त हो सकेंगी। क्रियात्मक, बौद्धिक और भावात्मक विकास का सृजन कर तुम एक नई देन बन सकती हो। नहीं तो अतृप्त भटकती रहोगी, जब तक भैरवनाथ तुझे छोड़ नहीं जाता। पर भैरव कब तुझे छोड़ेगा? कपिल तुम्हें अतीत की ओर खींच कर मात्र यादें ही सँजोने के लिए छोड़ जाएगा। साथ में केवल स्मृतियाँ ही शेष रहेंगी। गंगा तट की रेत, गंगा का कछार एवं बाराह देवता के खण्डहर बने मंदिर की दीवारें। तुमने तो केवल चलना ही सीखा है। अपने साथ औरों को लेकर चलो। तब सारा अतीत धूमिल होकर मिट जाएगा। केवल शेष रह जाएगा— जितना तुम्हें चाहिए।"

मैं माया के सम्मोहन में आ जाता, परन्तु गोरखनाथ जी के एक ही झटके ने मेरी विचार-तरोंगों को प्रवाहित कर दिया।

वह माया थी। अपूर्व दैहिक क्षमता थी। एक आकर्षण था। खिंचाव था। वह सौंदर्य की मूर्ति थी। यौवन ने उसके साथ मैत्री कर रखी थी। भाव-भंगिमाएँ प्रवृत्ति की देन थीं। उसके विचारों में सम्मोहन था। वह काम और कला दोनों का प्रतिनिधित्व कर रही थी। उसके मन का मूल तत्त्व काम था। माया का काम रवि की तरह श्वेत और अरुण आभा लिए था। उसके हृदय-रूपी कमल की पंखुड़ियाँ खिल गई थीं। वह प्रकृति की तरह कोमल भी थी और उग्र भी। एक ओर मनोरम एवं जीवन-दायिनी थी, तो दूसरी ओर प्रलय का भीषण रूप अंकित था।

उसे देखकर सुमधुर अभिलाषाओं का अम्बुधि लहराने लगा। मैं आदमी हूँ। मेरे साथ भी मन है। और आदमी का मन सदैव सौंदर्य का पोषक और उपासक रहा है। सुन्दरता के प्रति लगाव, प्रेम, आसक्ति, मन का सहज स्वाभाविक गुण हैं। मैं मन के इन्हीं गुणों के कारण खिंचा चला जा रहा था। वह हँस रही थीं। उसके कपोल अरुणिम हो उठे थे। वह मेरे लिए मर्म-भेदिनी प्रतिमा बन रही थी। पर बाबा गोरखनाथ जी ने मेरे मन में उस प्रतिमा के प्रति श्रद्धा, सत्य, प्रेम और विश्वास का विचार प्रवाहित किया। मैं अनासक्त बन गया। मकड़ी की तरह मृत संसार को अपने चारों तरफ लपेटे रहने से मुक्त हो गया और हिमालय की ओर निर्भय होकर चल दिया। माया भैरवनाथ छूट गये। हम गुफा की ओर चले जा रहे थे। रात

काफी कट चुकी थी। चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा था। चाँदनी दूर तक हिम-शिखरों पर पड़ रही थी।

सभी बर्फीली चोटियाँ चाँदनी में स्नान कर मन को मोह रही थीं। धीरे-धीरे हम गुफा की ओर बढ़ते गये। उधर चाँदनी ने गुफा को नहला दिया। इधर हम दोनों ने गुफा में प्रवेश किया।

गोरखनाथ जी के साथ खिचड़ी खाना

खिचड़ी पक कर तैयार थी। हरी बाबा पत्थर से टेक लगा कर प्रकृति के साथ मुग्ध नीरवता में बैठे थे। हम दोनों को देखकर मन-ही-मन मुस्कुरा रहे थे। हम तीनों ने खिचड़ी बाँट कर खायी। मेरे जीवन का वह प्रथम दिन था, गुफा के अन्दर इन महापुरुषों के साथ बैठकर आहार ग्रहण करने का। मैं छोटा था। उठ कर मैंने हरी बाबा और गोरखनाथ जी के खप्पड़ को लेना चाहा कि उसे धोकर पानी ले आऊँ, पर उन्होंने रोक दिया।

मैं मुँह ताकने लगा। असमंजस में पड़ गया। क्या करूँ। ये लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं। मैं अपना अधिकार समझता था। वह मेरा कर्तव्य भी था। तभी गोरखनाथ जी बोले, "कपिल, प्रत्येक चरण समाज में अलग सोच कर रखो। यहाँ कोई परम्परा नहीं। सम्प्रदाय नहीं। परिवार नहीं। छोटा-बड़ा नहीं। यहाँ सब कर्म है, संस्कार है। निर्माण नहीं—विलय है। तुम पुनः सृजन मत करो। रुक जाओ। विराम लगा दो। रेखा खींच दो। सदैव के लिए जीवन में पूर्ण विराम स्वरूप रेखा खींच दो। कामना नहीं, मोक्ष नहीं, मुक्ति नहीं, परमार्थ नहीं, कुछ भी नहीं। बस चलते रहो। जो कुछ होता है, होने दो। तुम मत रुकना। सभी कुछ में विराम लगा देना। अगर तुम रुक जाओगे, तो सब कुछ कार्यरत रहेगा। माया को तुमने देखा—वह सम्राट हर्षवर्द्धन के छोटे भाई, युवराज कृष्णवर्द्धन की पत्नी है। बाराह देवता की खोज में कापालिक अघोर भैरवनाथ की योगिनी बन गई और आज तक दोनों नदी के किनारे खड़े हैं। दोनों पाट ही नदी के हैं। पर कभी एक नहीं हो सकते। कभी तरंगें इधर को होंगी—कभी उधर को। आराध्य की प्राप्ति में ऐश्वर्य और उपलब्धियों का श्रेय नहीं है। वहाँ तो मात्र उपासना है। तुम अपना बर्तन साफ करो, मैं अपना खप्पड़ धो लूँगा। हरी अपना धोयेगा। सभी कुछ तुम्हें अपने में खोजना है।

जीवन स्वयं एक कला है। कला से जीवन है। अपनी कला से अपनी कला की खोज ही मूल है। हम तीनों बातें करते हुए गुफा से बाहर निकल आये। थोड़ी

दूर पर जल-प्रपात गिर रहा था। बाबा ने अपना खप्पड़ धोकर मुझे पिलाया, खप्पड़ से ही। उसे धोकर फेंका नहीं। "ये लो पी लो। सब कुछ है और कुछ भी नहीं। जीवन अमृत का घट और विष का प्याला दोनों है। इसी खप्पड़ से लेना और देना पड़ता है। मानव जीवन धारण करने का उद्देश्य भी यही है।"

मैं तुझे दे रहा हूँ या ले रहा हूँ—यह मैं जानता हूँ। तू और मैं, मैं और तू। कहीं अलग हैं तब तो लेना-देना है। और अगर दोनों एक ही हैं, तो फिर कौन लेता है? कौन देता है? यहाँ तो सब कुछ मिलता है। तू चलेगा, मैं चलूँगा। मैं हूँ तो तू है, तू है तो मैं हूँ—नदी और पानी की तरह। पानी है तो नदी है और नदी है तो पानी है। यदि एक नहीं है, तो दोनों नहीं। केवल सूखा मरुस्थल—रेत के टीलों का।"

पुनः हम गुफा में थे। निद्रा भगवती का प्रभाव मुझ पर पड़ने लगा था। और धीरे-धीरे मैं सो गया। चिड़ियों के कलरव ने रात्रि विदा हो जाने का संदेश दिया। प्रातः रश्मियाँ हिममण्डित शिखरों पर फैल कर हिमालय की सुन्दरता में चार चाँद लगा रही थीं; मैं गुफा के बाहर आ गया था। जल प्रपात में कस्तूरी मृग और काँकड़ के बच्चे के झुंड-के-झुंड किलोलें कर रहे थे। बाघ के बच्चे उनकी मस्ती में विघ्न डाल रहे थे। छुट-पुट कुहरा-बादल ऊपर उठ रहा था। रंग-बिरंगे फूल ही फूल चारों तरफ मन मोह रहे थे। हिमालय का बड़ा मोहक दृश्य था। मैं इधर-उधर घूम कर प्रकृति के सौंदर्य का अवलोकन कर रहा था। मन रह-रह कर दोनों महापुरुषों के बारे में चिन्तन कर रहा था। दोनों बाबा कहीं दिखाई नहीं पड़ रहे थे। मस्तिष्क के किसी कोने में दौड़ धूप जारी थी। प्रकृति अपने सौंदर्य की ओर आकर्षित कर रही थी। एक ही बार में दो विचारधाराएँ काम कर रही थीं। मैंने चिन्तन की कड़ियों को एक ही झटके में तोड़ दिया और स्वतंत्र मन को निरीह पथ पर डाल दिया। कुछ भी नहीं—सब कुछ विचारों का उद्‌गम ही तो है। भय या लोभ, राग या द्वेष, इच्छा या लगाव, इन सबमें विचार ही गतिशील हैं। बाबा हैं या नहीं, पर मैं तो हूँ। यदि मैं हूँ तो बाबा हैं। यदि मैं ही नहीं तो बाबा कहाँ—ऐसा विचार कर मैं नारायणी नदी के उद्‌गम पर पहुँच गया। पानी के छोटे-छोटे अनेक स्रोत बह रहे थे। जहाँ सिमट कर नारायणी का रूप धारण करते हैं, वहाँ स्नान कर, वस्त्रों को फैला दिया और अध खिले, कुछ खिले फूलों के मादक सौंदर्य को दौड़-दौड़ कर उकसाने लगा। मधुमक्खियों के समूह ने इसका विरोध किया। वे मेरे कानों के पास आ-आकर गुन-गुना कर कुछ कहने लगीं थीं। थोड़ी दूरी पर ब्रह्म कमल के फूल खिले थे। मैंने दौड़ कर दो-चार फूल तोड़ लिये। अजीब सी सुगन्ध

मेरे मस्तिष्क पर छाने लगी। ऐसा लगा कि मैं बेहोश होकर गिर जाऊँगा। पुनः दौड़ कर उन फूलों के बीच से दूर चला गया और एक पत्थर पर लेट गया। चारों तरफ बर्फ ही बर्फ की चोटियाँ नजर आ रही थीं। मैं अकेला उस चट्टान पर बैठा अपने आप को देखने लगा। न कोई वस्त्र मेरे शरीर पर था, न लज्जा। कहीं प्रकृति मेरे नंगेपन को देखकर शरमा तो नहीं रही है? पर ऐसा क्यों होगा? यह तो प्रकृति का स्वाभाविक गुण है। प्रकृति तो सदैव नरम है। कहीं माँ के समक्ष पैदा हुआ बालक शर्म का बोधक है? इन सबमें मानव-मन, विचारों की उलझन में पड़कर भिन्न-भिन्न वृत्तियों को धारण कर लेता है। ये सब तो नंगे ही हैं। पत्थर की चट्टान, हिमालय की चोटियाँ, ये पशु, गन्धर्व और किन्नर। इन्हें देखकर क्या प्रकृति नहीं शर्माती या फिर इनको शर्म क्यों नहीं आती? मैं जिस चट्टान पर बैठा था उसी की ओर मुख करके ही पूछ बैठा! पत्थर की वह मूक चट्टान मेरी मूर्खता पर हँस पड़ी—पगले कहीं के—शर्म, राग-द्वेष, मान-अपमान, हँसी-खुशी, दुःख-सुख ये सब तुम मनुष्यों के साथ ही पैदा होते हैं और तुम मनुष्यों के साथ ही मिटते हैं। हम तो ममता की गोद में नंगे ही पैदा हुए। प्रकृति को हमने नंगा ही देखा है। नंगे ही जाड़ा, गर्मी, बरसात सभी को झेलते हुए शिवत्व का सन्देश देते हैं। विकास की कल्पना तुम्हीं करते हो। विनाश के कारण भी तुम्हीं बन जाते हो। हम न कल्पना करते हैं और न दिवा-स्वप्न देखते हैं। हम न परख करते हैं, न हममें भेद-भाव है। यह सब मानव-मन की खुराफात है।

विकास, विकास और विकास की ओर बढ़ते-बढ़ते विनाश की ओर चले जाते हैं। प्राचीन का विनाश कर नूतन का निर्माण करने के आदी बन गये हैं। पुरानेपन को नयापन देना स्वभाव बन गया है। भूल जाते हैं कि जहाँ जन्म है, वहीं मृत्यु है; जहाँ कल्पना है, वहीं निर्माण है। जहाँ सृजन है, वहीं विनाश है। न जाने कब तक वह पत्थर की चट्टान मानव-मन की खुराफात का पर्दाफाश करती रहती, अपनी मूक भाषा में। मेरी विचारधाराएँ दोनों तरफ काम करती हैं। मैं पत्थर भी था और चेतन भी। तभी मेरे मस्तिष्क को एक झटका लगा। गुफा की ओर से हरी बाबा आवाज दे रहे थे। मैं दौड़ पड़ा, जिधर मेरे कपड़े पड़े थे। पत्थर शायद हँस रहा था, क्योंकि हरी बाबा भी हँस रहे थे और कुछ हंस भी किनारे पर खड़े होकर मुझे ही देख रहे थे। मैंने वस्त्रों को कमर मे लपेट कर गुफा की तरफ चल दिया। हरी बाबा मुस्करा रहे थे। मुझे शरम आ गयी, तो बाबा ने झटके से कपड़े उतार कर नीचे फेंक दिए—"वस्त्र तो विचार पहनते हैं। भाव की गति भी विचार ही है। विचार-तरंगों में ही सब कुछ है। विचारों का प्रवाह ही बन्धन और

लगाव है। विचार-तरंगें ही जन्म और मृत्यु के सन्देश को देती हैं। अन्तः और बाह्य जगत् के प्रवाह का अध्ययन भी विचार ही है। बालक, युवा, वृद्ध, लज्जा, क्षमा, दया, प्रेम, स्त्री, पुरुष का बोध भी विचार का ही अंग है। हर कार्य में विचार तरंगों का प्रभुत्व है। कपिल इसे ही अपने प्रभुत्व में ले लो। तुम पुरुष भी हो। तुम ही नारी हो। समाज भी तुम हो। राष्ट्र भी तुम हो। तुम्हें समाज से, नारी से, लज्जा आती है तो तुम अपने विचार को बदल दो। उसी पत्थर की चट्टान की तरह जो कुछ देर पहले तुम्हें मौन सन्देश दे रही थी। दोनों तरफ तुम ही थे। वह पत्थर-मूक था, पर फिर भी तुम उस पत्थर से प्रभावित थे। तुम ही विचार कर रहे थे। तुम ही मनन कर रहे थे और निर्णय भी ले रहे थे। पर उस पत्थर के माध्यम से तुम्हारे ही विचार तुम पर प्रभावित थे। तुम्हें ही जड़ता में आना है। तुम्हें ही चेतना में भी रहना है। तुम में ही नारीत्व है, तुम में ही पुरुषत्व है। अतृप्त पिपासा को नारी बन कर पुरुषत्व से सम्बन्ध जोड़ कर तृप्त करना पड़ेगा और पुरुष बनकर नारीत्व को मातृत्व देकर अपने में ही बिहार करके बोधि वृक्ष पर चढ़ना पड़ेगा। तुम्हें जड़ बनकर पत्थर से संदेश लेना पड़ेगा।''

''इन हिम-शिखरों पर चढ़कर उनसे पूछना पड़ेगा कि तुम्हारा सत्य क्या है। तुम अडिग क्यों हो। तुम्हें नदी का प्रवाह बनकर ऊँचे-नीचे दौड़-दौड़ कर कंकड़ और पत्थरों से ठोकर खानी पड़ेगी। पेड़ों की तरह खड़ा रहकर वज्रपात सहना पड़ेगा। पशुओं की तरह अबोध बन कर मार खानी पड़ेगी। हिंसक जानवरों के सदृश पशुओं के पीछे दौड़कर मिटाने की जिज्ञासा को समाप्त करना पड़ेगा। वेश्याओं की तरह प्रतीक्षा करनी होगी। कुत्तों की तरह वफादार और मुँहताज होना पड़ेगा। चोरों के सदृश धैर्य रखना पड़ेगा। राजाओं की तरह अभिमानी होना पड़ेगा। डर कर भाग रहे जानवरों की तरह जीवनदान माँग कर जीवन के महत्त्व को समझना पड़ेगा। तभी तुम कहीं जाकर टिक सकते हो। साधु सभी घाटों का पानी पीता है और सभी को पीने का प्रोत्साहन देता है। इन सभी कर्मों में सभी जगहों पर तुम्हारे विचार ही काम करेंगें। तुम नंगे हो—पर विचार कह रहे हैं—नहीं। तुम्हें समाज कुछ कहेगा—पर तुम नंगे नहीं हो सकते। सम्पूर्ण विश्व नंगा है। महाभूतों के समावेश में राग और राहत दोनों विचारों में समाहित हैं। पतन और उत्थान इसी पर आधारित हैं। हार और जीत भी इसी पर आधारित हैं। सम्पूर्ण विश्व का ज्ञान इसी में है। भावों का बोध, विवेक का मूल, सब विचार में ही हैं। ये लो अपने वस्त्रों को पहन कर विश्व की ओर देखो। कौन कितनी दूर कैसे खड़ा है या भाग रहा है। अपने जीवन-पथ पर तुम कहाँ थे और अब कहाँ आ गये। तुम्हारे मूल

में जो था, वही है, या कुछ और हो गया है। बीच में तुम जो कुछ भी थे, अब वह नहीं हो और कुछ क्षण के बाद यह भी नहीं रहेगा।''

''इसी तरह जगत् का चित्रण है। कपिल, माया ही माया की कंचुक है। भौतिक जगत् भौतिकता में बड़ा व्यस्त हो गया है। नीरवता छाती जा रही है। मनुष्य अपने पतन के दरवाजे स्वयं खोल रहा है। प्रकृति विरोध में सतत प्रयत्नशील है अपने स्वाभाविक रूप में बनी रहने के लिए। मानव खोज रहा है, एक से एक नवीनता को। उसकी ये उपलब्धि स्वयं के लिए चुनौती बनती जा रही है। मानव अपने आप को भूलता जा रहा है। स्वयं के अस्तित्व को मिटाकर मशीनों के वशीभूत होकर वह असहाय होता जा रहा है। मनुष्य अपने आप को नहीं खोज रहा है। अगर आदमी अपने आप में ढूँढ़े, अपने में डूबे, अपने आप को मारे, तभी वह कुछ पा सकता है। नहीं तो इस पंच भौतिक नश्वर शरीर को कब तक ढोयेगा। अगर मनुष्य अपनी स्थूल काया को योग द्वारा अमर कर ले, तो जीव को शरीर परिवर्तन करने की बार-बार आवश्यकता नहीं होगी। जीव ने तो शरीर को धारण किया है। कर्मों के आधार पर निर्मित संस्कार के बन्धन में पड़कर जन्म-मरण अर्थात् परिवर्तन के कारण ही अच्छे-बुरे संस्कार हैं, यदि इसका निर्माण ही समाप्त कर दो तो जीवात्मा स्वतः सब कुछ बन्धन मुक्त कर स्वेच्छाचारी बना देता है। हर मानव का लक्ष्य तो यही है परन्तु माया जगत् के भौतिक प्रारूप के रूपान्तर में पड़कर विचारों का प्रवाह बदलते रहने के कारण आज प्रायः मानव अनिश्चय की स्थिति में पड़ा मिलता है। वह खुद नहीं जानता कि वह क्या कर रहा है और आगे चलकर क्या होगा? अंदाज की जीवन-रेखा पर आशा का वृत्त बनाकर वह चलता है। जो सामयिक, सामाजिक, परिस्थितियों से प्रतिबन्धित होता है, वह स्वतंत्र होना चाहता है। पर विचारों का उथल-पुथल उसे मुक्त नहीं कर पाता। तुम भी इन्हीं में भटकते रहे हो और मैं सतत तुझे मार्गदर्शन देता रहा। हर मोड़ पर मैं आया। हर चौराहे पर मैंने तुझे रास्ता बताया। स्मृतियों को ताजा किया। पूर्व के संस्कारों को मिटा-मिटा कर प्रकाश मार्ग पर डालता रहा। कल से सम्बन्धित घटना-क्रम की जानकारी देता रहा। आज तुम अपने आप में स्वयं खो चुके हो। योगीप्रवर गोरखनाथ की अमरवाणियाँ तुझे मार्ग-दर्शन स्वरूप मिल चुकी हैं। उनका सान्निध्य तुम प्राप्त कर अपने आप की स्थिति के बारे में सोच सकते हो। आज तुम कहाँ खड़े हो और आध्यात्मिक जगत् के किस चरण में हो। ये युगान्तर योगी, युगद्रष्टा यदा-कदा ही ऐसे मनुष्यों के सम्पर्क में आया करते हैं, जिनका संस्कार बहुत श्रेष्ठ होता है या जिनसे ये किसी जन्म में किसी-न-किसी रूप में सम्बन्धित होते हैं। तुम्हारे

जन्म-संस्कार श्रेष्ठ हैं। तुम पूर्व में भी इनसे सम्बन्धित थे। तुम्हारे यहाँ तक पहुँचने की प्रतीक्षा बाबा गोरखनाथ करते रहे और मुझे तुम्हें यहा ले आने की प्रेरणा देते रहे। यह सम्बन्ध बना ही रहना है। तपस्या के बाद भी अनेक महर्षि गिर जाते हैं। अपने कर्मों का उत्थान करने के लिए मनुष्य शरीर को धारण करते हैं और उनके मार्गदर्शक गुरु अपनी क्षमता से उसे खोज लेते हैं। जब तक शिष्य स्वयं के अस्तित्व का बोध करके विचारों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक यह सम्बन्ध बना ही रहता है।''

दीक्षा

''कुछ पल में बाबा गोरखनाथ पुनः आ जायेंगे। तब हम दोनों तुम्हारे वृत्ति-संस्कारों को बदल देंगे। यहीं से तुम्हारी वह यात्रा समाप्त होनी है और अब ऐसी यात्रा शुरू करोगे जो कहीं भी जाकर समाप्त नहीं होती। तब तक तुम वहीं नदी में जाओ। वहाँ एक युवा बालक मिलेगा। वह नदी के किनारे से आयेगा। वह जैसा कहेगा, वैसा ही करना। अपने सम्पूर्ण बालों को मुंडन करा कर, केवल चोटी रख कर, स्नान करके तैयार रहना। तब तक हम आते हैं।''

''अतीत एक गहरा समुद्र है और भविष्य भी, दोनों एक निरन्तर गति में बहते हैं। न आदि है, न अन्त है। वर्तमान एक नाला है जो अतीत से निकला है, और भविष्य में खो जाएगा। पर तुम्हें खोना नहीं है। डूबना नहीं है, तुम्हें प्रवाहित ही होते रहना है। इस अनन्त प्रवाह में तुम्हें हिमालय की तरह अडिग और सुमेरु की तरह स्थिर रहना है।''

मैं नदी के किनारे आ गया। नारायणी बह रही थी। जहाँ पर रेतीला मैदान था, उधर ही आकर कुछ क्षण रुक गया। सूरज नजर नहीं आ रहा था। प्रकाश धीरे-धीरे पहाड़ियों से नीचे उतर रहा था। सभी कपड़ों को उतार कर पानी की धाराओं के साथ खेलने लगा। नदी के तेज बहाव में तिनके की तरह मन को बहते जाने दिया। फिर इसमें उतार चढ़ाव न होने पाये। मन और पानी के बहाव में कितनी तेजी है। नदी की धाराएँ कितनी उमंग, कितनी चाह लेकर अनन्त सागर में मिल जाने के लिए ऊँचे-नीचे पत्थरों से टकराती अपने लक्ष्य की ओर चली जा रही हैं और हिमालय अपने असंख्य प्रपातों द्वारा इन्हें प्रोत्साहित कर रहा है। मानो कह रहा हो—''ऐ नदियो, इन बूँदों को भी अपने में सिमटा कर सागर तक ले जाओ।''

लताएँ, वृक्षों की डालियाँ और उनकी छाया पानी की लहरों के साथ हिचकोले ले लेकर अभिवादन कर रही थीं। अपना प्यार जल-प्रवाह को समर्पित कर रही थीं। पक्षी

इस डाल से उस डाल पर उड़-उड़ कर सूनेपन को तोड़ रहे थे। कभी-कभी जानवरों की आवाजें आ-आकर सन्नाटे को तोड़ रही थीं और शरीर में सिहरन पैदा कर रही थीं। मैं मन को नदी की तेज धारा के साथ दौड़ा कर मन्त्र-मुग्ध-सा प्रकृति के इस दैनिक खेल का अवलोकन कर रहा था। तभी मेरे बगल में एक युवा बालक आकर खड़ा हो गया। बड़ा ही तेज उसके शरीर से निकल रहा था। मस्तक चमक रहा था। सफेद वस्त्र धारण किये चोटी बाँधे वह दिव्य बालक देवताओं के सदृश लग रहा था।

उसने आवाज देकर मुझे बुलाया। मैं उसके पास जाकर रुक गया। उस युवा बालक ने मेरे सिर को पानी से धोकर पूरे सिर के बालों को उतार दिया और चोटी पकड़ कर मन्द-मन्द मुस्कराने लगा—"जीवन का लक्ष्य तुम्हारा पूरा हो जायेगा, इस शिखा को काटते ही।" मैं भी तुम्हारी तरह कई जन्मों तक भटकता रहा। तब कहीं जाकर इस स्थिति को प्राप्त हुआ हूँ। बाबा गोरखनाथ और हरी बाबा का सान्निध्य बहुत कम लोगों को मिल पाता है। पहचान ही कौन पाता है। नेपाल और भारत के हिमालय के गाँवों में प्रायः इन्हें घूमता हुआ मैंने देखा है। पर इन मस्त अलख जगाते योगियों को भौतिक जगत् की चार दीवारी में घिर जाने वाले कहाँ पहचान पाते हैं। न जाने क्यों विश्व समुद्रतल में खो जाने के साधन इकट्ठा करने में जुटा है। जीना तो हर कोई चाहता है, पर वे सब अपने आप में क्यों नहीं जीते। क्या उन्हें उतना काफी नहीं है, जितना उन्हें मिल चुका है। वह स्वयं एक सत्य है। देखो कपिल! तुम विश्व की सभी वैज्ञानिक चुनौतियों को मस्तिष्क का एक विकार समझ कर झुठलाते रहना। तभी आज के आधुनिक वैज्ञानिकों के दिमाग साफ होंगे। जीवन रुक जाने के लिए, बदल देने के लिए नहीं मिला है। यह तो एक कल्पवृक्ष है, जो सदैव सम्पूर्ण गुणों से फलता-फूलता है। आत्मीय-विकास श्रेयस्कर है। जीवन को प्राप्त करने के उपरान्त, देखो तुम पीछे मत मुड़ना, रुकना मत। चलते रहना। समय तुम्हारा साथ देगा। देखो महापुरुष चले आ रहे हैं।" करीब आकर उन लोगों ने ब्राह्मण रूप धारी उस युवा बालक को कुछ दिया। मेरे कपड़ों को लेकर वह उस दिशा में चल दिया जिधर से नदी आ रही थी। वह मुस्करा रहा था और मुड़-मुड़ कर देखता जा रहा था।

धूप और बादल आँख मिचौली खेल रहे थे। नदी की तरंगों में चढ़ाव आ गया था। पेड़ झुक-झुक कर अभिवादन करने लगे थे। हवा के मन्द-मन्द झोंके शरीर में एक अजीब-सी अनुभूति पैदा करने लगे थे। दोनों महापुरुषों के आते ही सूरज की किरणें बादल से मिल कर स्निग्ध छाया दे रही थीं। प्रकृति का कण-कण सजग हो गया था। पक्षियों की आवाज बन्द हो गयी थी। सम्पूर्ण वातावरण में

एक अद्‌भुत परिवर्तन था। लगता था कुछ होने वाला है। दोनों महापुरुष तट पर आकर रुक गये थे, थोड़ी ही दूरी पर मैं चलकर उनके समीप पहुँचा और दोनों देवतुल्य पुरुषों का बारी-बारी से चरण स्पर्श कर खड़ा हो गया। धीरे-धीरे दोनों पानी में प्रवेश करते गये। मुझे भी साथ लेते गये। नदी के बीच जाकर बारी बारी से दोनों ने मुझे स्नान कराया, फिर आचमन, और मेरे शरीर को पवित्र करके नदी में ही परिक्रमा की। नदी का पानी चढ़ने लगा। बाबा गोरखनाथ मुस्करा रहे थे। दोनों महापुरुषों ने जल को अभिमन्त्रित कर मुझे दिया।

संकल्प की सीढ़ियों पर खड़ा कर संसार की भौतिक स्मृतियों को मन में उजागर कर संसार वाटिका के पुष्पों की सुगन्धों का निराकरण कराया। मन्द-मन्द मुस्कान के साथ मैंने सारे इष्ट-मित्रों, परिवार के सदस्यों, प्रेमियों-प्रेमिकाओं को इर्द-गिर्द खड़े देखा। विचित्र दृश्य उपस्थित था मेरे आस-पास और मैं बीच में खड़ा इस नाट्य लीला का पात्र बना नदी की लहरों के साथ भाग जाने का प्रयास करता रहा। मन तो कभी का भाग चुका था। स्मृतियाँ शेष थीं। दृश्यगोचर थे जो चित्त ग्रहण कर चुका था और संस्कार में संचित हो चुका था। कई एक जन्म-जन्मान्तरों के अधिकाधिक संबंधों का अनावरण होता रहा। मैं हाथ में संकल्प का जल लेकर दूर-दूर तक का दृश्यावलोकन करता रहा। अतीत वर्तमान में चित्रित था। मैं अपनी आत्मा को कभी पशु, कभी सर्प, कभी आदमी में भटकता देख रहा था। कभी हिंसक सिंह बनकर भटक रहा था, तो कभी हिरण बन कर भाग रहा था। कभी साधू बनकर कृच्छ साधना में लगा था, तो कभी भोगी बनकर कुकर्म कर रहा था।

सबमें मैं ही था। मेरी ही आत्मा। संसार को बनते देख रहा था। संसार को बिगड़ते देख रहा था और उस बनते बिगड़ते समय में मैं भी उलझा था। सभी जन्मों को देख रहा था। गोरखनाथ और हरी बाबा नदी के तट पर खड़े थे। दोनों हँस रहे थे। मैं सिर से कम्पायमान हो रहा था। तभी हरी बाबा मेरे हाथ से जल को लेकर पी गये। मेरा शरीर पुलकित हो गया। रोम-रोम खिल गया। सब कुछ गायब हो चुका था। मैं और दोनों महापुरुष खड़े थे। दोनों हँस रहे थे। मैं सिर से कम्पायमान हो रहा था। तभी हरी बाबा ने गोरखनाथ की छाया में खड़े होकर मुझे बिठा दिया। बाबा गोरखनाथ जी ने अपने कपड़ों से सिर पर छाया की और हरी बाबा ने मेरे सिर की चोटी तेज चाकू से काट ली, मोड़कर गाँठ लगाकर अपनी झोली में रख ली और कान में दीक्षा मन्त्र देकर फूँक दिया। उसी समय बाबा गोरखनाथ जी ने अपनी झोली से भस्म निकाल कर मेरे पूरे सिर और शरीर में मल दी। विभूति के लगते ही मैं एक अजीब से नशे में खोता जा रहा था। तभी उन्होंने

मेरे सिर को झकझोरा। बोले—"जा-जा, अजगर की तरह पड़े रहना।" और अपनी उसी सर्वगुण सम्पन्न झोली से खाने के लिए मिष्ठान निकाल कर दिया। "हिमालय के दीर्घ बिन्दु से लेकर पिण्डार की घाटियों में भटकते रहना। आवश्यकता पड़ने पर मैं मिलता रहूँगा। जीवन में विराम नहीं होता है। चलते ही रहना। चलते जाना। अगम अगोचर की राह पर।"

और वे चले गये। नारायणी की तीव्र तरंगों के प्रवाह में वे खोते चले गये। तन के सभी दरवाजों को बन्द कर, मन के विकारों के संग्रह को अन्तर्मुख कर नित्य आनन्द में पड़े रह कर सूक्ष्म और कारण शरीरों का अवलोकन कराकर अपनी यादों की झोली मुझे सौंप गये।

समय बिना प्रतीक्षा किये बढ़ता गया। मैं निरन्तर चार दिन तक अजगर की तरह उस नती के रेतीले मैदान पर लेटा रहा। हरी बाबा का सान्निध्य मिलता रहा। न सूर्य की किरणें और न रात्रि का गहन अंधकार और न नदी का उतार-चढ़ाव ही मुझे उठा सका। मैं पड़ा ही रहा। चार दिन के उपरान्त अवतार बाबा आ गये। लम्बा शरीर था। आँखें सब कुछ बोध करा रही थीं। बड़ा ही दिव्य शरीर था। लम्बा चोंगा और सिर पर पगड़ी धारण किये हुए थे। अवतार बाबा हरी बाबा के सद्गुरु महाराज हैं। उन्हें कोई रामूपीर कहता है, तो कोई अवतार गिरि, तो कोई औघड़ बाबा कहते हैं। वे जन्म से हिन्दू हैं या मुस्लिम, पहचान में नहीं आते। सभी कुछ वे सहज भाव में करते जाते हैं। दुनिया की प्रायः सभी भाषाओं का उन्हें ज्ञान है। संसार के सभी बाजार भाव और राजनीतिक ओर-छोर का उन्हें हर क्षण पता है। अतीत को समेट कर वर्तमान के साथ और भविष्य को भी जोड़े हुए सदैव हँसते रहते हैं।

अवतार बाबा हम दोनों को लेकर नारायणी से हटकर गण्डकी के किनारे-किनारे तातो पानी, दाना, जुमसम, मुक्तिनाथ होते हुए दामोदर घाटी पहुँच गये। कुछ दिन वहाँ विश्राम कर मुस्तांग घाटी होकर अपि पर्वत की ग्लेशियर गुफा में रुके। फिर काली गंगा को पार कर लीपु लेक होते हुए मानसरोवर पहुँच गये। वहाँ कुछ दिनों तक हम अन्य महात्माओं के साथ रहे। दुर्लभ तन्त्र साहित्य के साथ योग विज्ञान पर प्रकाश डलवाया। फिर राक्षस ताल के दृश्यावलोकन के बाद कुछ दिन कैलाश परिक्रमा में लग गये। पुनः हम लोग मानसरोवर आ गये। मानसरोवर में स्नान करा कर मुझे स्वच्छन्द विचरण करने के लिए छोड़ दिया। मैं इन सभी रास्तों से कभी नहीं गुजरा था, पर ऐसा लग रहा था कि मैं शताब्दियों से इस रास्ते पर चलता आ रहा हूँ। हिम-मण्डित

शिखर शीश उठाये खड़े थे। नदियों के उद्गम अपनी छटा विखेर रहे थे। हिम गल कर पानी के रूप में वहता जा रहा था। अवतार बावा ने मानसरोवर के तट पर से मुझे अकेले अपने सफर पर जाने का आदेश दिया। हरी बावा शायद चाह कर भी रोक नहीं सके। वे हम दोनों के वीच खड़े मुस्करा रहे थे। कभी हिम नदियों के उतार की ओर देख रहे थे, तो कभी हिमालय की ऊँची चोटियों की ओर। अवतार बावा ने हरी बावा से कहा, "इसे अभी जाने दो। अपने पूर्व संचित संस्कारों को जलाने दो, बहुत कुछ बाकी है, अभी करने को। पूर्णता से पूर्णता को बाहर लाने दो। सृजन मत करना, केवल मिटाना।"

दोनों मूर्तियों को श्रद्धा से नमस्कार कर गुरु प्रसाद प्राप्त कर मैंने कैलाश की ओर देखा। फिर कभी मिलेंगे, मन-ही-मन विचार कर चल दिया। हिमालय की ऊँची-नीची चोटियों से होता हुआ मुस्तांग आ गया। कुछ दिनों तक बौद्ध विहार में रह कर भिक्षुओं के साथ विताया। फिर बौद्ध लामा राजा से मिलकर दामोतर कुण्ड आ गया। वही सब पुरानी स्मृतियाँ नजर के सामने घूम रही थीं। लगता था, मैं सदियों से इस रास्ते पर चलता रहा हूँ।

इसी प्रकार से हरी बावा के जीवन से अनेकों दिव्य घटनाएँ जुड़ी हुई हैं तथा हिमालय के अमर योगियों का उन्हें साहचर्य प्राप्त है। परम तत्त्व में सतत स्थिति बनाए रखना ही उनकी सहज स्थिति है। वे सदा स्वरूपस्थ रहते हैं। परमात्मा से ऐक्य ही उनके जीवन का परम लक्ष्य है।

❑

योगेश्वर बन्धु

सूक्ष्म शरीर में रहने वाले बन्धु का स्मरण आते ही मन शान्त होने लगता है। माया का पर्दा हल्का हो जाता है। तनाव, अशान्ति, थकान, शरीर का दर्द गायब होने लगता है। शान्ति की एक दिव्य अनुभूति होती है। पवित्रता का प्रसार होने लगता है। योगेश्वर बन्धु महान् गृहस्थ योगी, स्वनामधन्य कालीपद गुह राय, जिन्हें प्यार से कालीदा कहा जाता है, के मार्गदर्शक एवं महागुरु थे। कालीपद गुह राय के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि इनकी ही प्रेरणा से कई खण्डों में 'भारत के महान् साधक' नामक महाग्रन्थ की रचना की गयी है, जो भारतीय आध्यात्मिक साहित्य की अमूल्य धरोहर है। योगेश्वर बन्धु ने कलकत्ता नगरी में कालीपद गुह राय को बातों बातों में प्रेरणा देकर एक महान् योगी बना दिया था। हो सकता है, योगेश्वर बन्धु ज्यादा करके अपने सूक्ष्म शरीर में हिमालय में ही रहते हों और यदि वे वहाँ नहीं भी रहते हों, तो भी हिमालय के योगेश्वरों की तरह वे योग की अत्यन्त उच्च भूमि में स्थित हैं तथा भारत में अध्यात्म के प्रचार में उनका अत्यन्त सराहनीय योगदान है।

कालीपद गुह राय एक दिन अपने कार्यालय में बैठे हुए काम कर रहे थे। सहसा 'पुश डोर' को धक्का देकर एक अत्यन्त सुन्दर तथा परम शान्त नवयुवक कमरे के अन्दर आया। कालीदा न उनसे पूछा- क्या बात है? मनोहारी आगन्तुक युवक ने कहा- "कुछ नहीं, ऐसे ही।" इसके बाद मधुर मुस्कान बिखेरते हुए कुछ क्षणों तक वे कालीदा को देखते रहे। उनके नयनों तथा मुखावृत्ति पर एक दिव्य मनमोहक आकर्षण था। इसके बाद वे जैसे आये थे, वैसे ही चले गए।

इस परमपावन दर्शन ने कालीदा के मन तथा शरीर को पूरी तरह से आनन्द से आप्लावित कर दिया। उनके शरीर में जैसे दिव्य चेतना का संचार हो गया। जैसे,नस-नस में दिव्य शक्ति का प्रवाह दौड़ गया। कालीदा उस दिव्य व्यक्तित्व के बारे में गहराई से सोचते रहे। उनके मन में यह विचार आया कि यह कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है, अपितु एक लोकोत्तर पुरुष है, जो कुछ मिनटों में ही इस प्रकार से ऊर्ध्व चेतना से सम्पूर्ण शरीर को संचारित कर गया।

उसके बाद पार्कों, मैदानों, ट्राम में, बस में, रास्ते में तथा कार्यालय में बन्धु का दर्शन होने लगा। कालीदा एक दिव्य चेतना में तरंगायित रहने लगे। जब बन्धु का साक्षात्कार होता तो आत्मतत्त्व, दर्शन, संस्कृति तथा साहित्य की चर्चा होती।

बन्धु से चर्चा के समय ऐसा लगता कि वे सर्वज्ञ हैं। सभी विषयों पर उनका पूर्ण अधिकार है। उनके सानिध्य से यह भी भासित होने लगा कि वे सर्वान्तर्यामी हैं तथा असाधारण योग विभूतियों के अधिकारी हैं। जब कालीदा का उनसे साक्षात्कार होता तो वे भाव विभोर हो जाते तथा यह पूछने का ध्यान ही नहीं रहता कि उनका क्या नाम है? वे कहाँ रहते हैं? बन्धु नाम तो कालीदा ने अपने अंतरंग योग के मित्रों से चर्चा के लिए स्वयं रख लिया था।

एक दिन कालीदा बन्धु के साथ पैदल जा रहे थे कि उन्होंने देखा कि एक रिक्शे का पहिया बन्धु के शरीर को चीरता हुआ-सा चला गया। अब कालीदा जान गए कि बन्धु एक सूक्ष्म शरीरी दिव्य सत्ता हैं। उनका शरीर मात्र उन्हीं लोगों को दिखाई पड़ सकता है, जिसे वे स्वयं दिखाना चाहें, या फिर उन्हीं जैसे योगिराज उन्हें देख सकते थे। कालीदा ने कई बार देखा कि बन्धु जो चाहते थे, वही हो जाता था। प्रकृति जैसे उनकी अनुचरी हो। यह सब जानने के बाद बन्धु कौन हैं? क्या हैं? कहाँ रहते हैं? कालीदा के लिए यह सब अप्रासंगिक हो गया।

ठाकुरियाँ की रानी भट्टाचार्या बड़ी धार्मिक थीं। वे कालीदा से प्रायः बन्धु के बारे में चर्चा करती रहतीं। एक दिन बन्धु रानी जी से भी मिलने आए तथा वहाँ बैठकर भिन्न-भिन्न आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा भी करते रहे।

कुछ दिनों बाद बन्धु के साथ एक और भी सहयोगी आने लगे। वे भी ज्ञान तथा योग के उत्कृष्टतम शिखर पर अधीष्ठित थे। वे प्रेम तथा दिव्य रस की खान थे। इनको कालीदा कभी प्रोफेसर तथा कभी छोटे कर्त्ता कहकर सम्बोधित करते थे।

बन्धु कालीदा से बड़े प्यार से बातें करते तथा बात-बात में ही वे उन्हें योग तथा ज्ञान की निगूढ़ गहराइयों में लिये जा रहे थे। कालीदा अपना अस्तित्व तथा व्यक्तित्व भूलकर उन्हीं में डूबे रहते। वे प्रायः अन्तर्मुख रहते। कभी-कभी बाह्य ज्ञान लुप्त-सा हो जाता। बन्धु कहते कि जिस समय जो करना है, उसे ठीक से करना चाहिए, बाकी सब भगवान् देखेंगे। कालीदा परिचितों को ठीक से अपना कर्त्तव्य पालन की प्रेरणा देते। भारत के महान् साधक के महान् लेखक श्री प्रमथनाथ भट्टाचार्य भी धीरे-धीरे इन महामानव से प्रेरित होने लगे।

एक दिन की बात है- बन्धु ने कालीदा से कहा कि प्रमथ यहाँ घूमता रहता है और उसकी माँ ढाका में मरणासन्न है। अपनी सन्तानों में प्रमथनाथ को सबसे ज्यादा प्यार करती हैं। उससे कह दो कि वह अपनी राजरानी जैसी माँ की उपेक्षा

न करे। वे पूर्वजन्म में राजरानी ही थीं। उससे यह भी कह देना कि जाते समय वह एक लाल पाड़ी की साड़ी भी अपने साथ लेता जाए।

प्रमथनाथ ने उसी दिन ढाका के लिए ट्रेन द्वारा प्रस्थान किया। उन्होंने वहाँ देखा कि माँ बुरी तरह से बीमार है। डाक्टर दो दिन पूर्व ही जवाब दे चुके हैं, परन्तु वे अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति के कारण अभी तक जीवित हैं। प्रमथनाथ के पहुँचने के ८-१० घंटे बाद उन्होंने शरीर त्याग किया। वह लाल पाड़ी वाली साड़ी उनके कफन के काम आयी।

एक दिन बन्धु ने कालीदा से कहा कि राम तुमसे मिलना चाहता है। कालीदा राम के विषय में नहीं जानते थे, अतः उन्होंने कहा—ये राम कौन हैं? बन्धु ने बताया कि उनका पूरा नाम रामठाकुर है। योग तथा तन्त्र के जो कुछ एक साथ महान् ज्ञाता हैं, रामठाकुर उनमें से एक हैं। बन्धु ने कहा कि राम कल अपराह्न तीन बजे विक्टोरिया मेमोरियल के उत्तरी मेन गेट के सामने तुम्हारी प्रतीक्षा करेगा। तुम ठीक समय पर पहुँच जाना। कालीदा नियत समय पर नियत स्थान पर पहुँच गए। उन्होंने देखा कि एक गौरवपूर्ण, लम्बे शरीर, उज्ज्वल नयन वाले व्यक्ति खड़ाऊँ पहने खड़े हैं। अधोवस्त्र के रूप में एक धोती पहने हैं तथा ऊपर एक फतुही पहने हैं। कालीदा उन्हें देखते ही जान गये कि यही रामठाकुर हैं। जापानी बम वर्षकों के भय से उस समय लोग बाहर नहीं निकलते थे, अत; वहाँ पर्याप्त एकान्त था।

जाते ही रामठाकुर ने कालीदा को बाहों में भर लिया। कौन कह सकता था कि ये महाशक्तिधर, परमतत्त्ववेत्ता महायोगी रामठाकुर हैं।

बातें ज्यादा करके बन्धु के ही बारे में होती रहीं। रामठाकुर से पता चला कि बन्धु ईश्वरस्वरूप हैं। बात-बात में ही दो घंटे का समय बीत गया। कालीदा को इसका पता ही नहीं था। जब उन्होंने अपने हाथ में बँधी घड़ी देखा तो वे कुछ चिन्तित हो उठे। रामठाकुर ने कालीदा से पूछा— क्या बात है? कालीदा ने बताया कि उन्हें एक जरूरी काम से पाँच बजे नीमतल्ला एक सज्जन से मिलने जाना है। नीमतल्ला यहाँ से ५ मील दूर है, अतः अब मिलना सम्भव न हो पाएगा। योगिराज रामठाकुर ने कहा कि इसमें कौन बड़ी बात है, मैं तुम्हें अभी वहाँ पहुँचाए देता हूँ। रामठाकुर का इतना कहना ही था कि कालीपद गुह राय ने देखा कि वे नीमतल्ला में उन्हीं सज्जन के मकान के सामने ट्राम से उतर रहे हैं। रामठाकुर ने अपने योगबल से एक मिनट के अन्दर श्री कालीदा को सशरीर पाँच मील दूर पहुँचा दिया।

धीरे-धीरे बन्धु का स्वरूप कालीदा के समक्ष और स्पष्ट होता गया। संध्या या रात्रि के समय काफी देर तक कर्जन पार्क या गाडिया मैदान में कालीदा का बन्धु या छोटे से साक्षात्कार होता। उनके बैठते ही एक शुभ्र ज्योति आसपास फैल जाती, उस ज्योति के प्रकाश में कालीदा अपने साथ लाये हुए ग्रन्थों को आसानी से पढ़ लेते थे।

एक दिन कालीदा बन्धु के साथ बैठकर आध्यात्मिक विषयों पर चर्चा कर रहे थे। कालीदा ने कहा कि आदिकाल से लेकर अब तक सर्वश्रेष्ठ योगी कौन-कौन से हुए हैं। बन्धु ने बताया, जैसे ब्रह्म सृष्टि के कण-कण में विराजमान हैं, वैसे ही ऋषिगण उनके साथ युग-युग से रहते चले आये हैं। बन्धु ने कहा कि मैं तुम्हें सर्वश्रेष्ठ ऋषियों की एक झाँकी दिखाता हूँ। थोड़ा पास आकर बन्धु ने कालीदा के मेरुदण्ड का स्पर्श किया। उसी समय कालीदा की दृष्टि के सामने टेलीविजन जैसा पर्दा आ गया। उन्होंने देखा कि ज्योतिर्मय दश ऋषि हैं और बन्धु उन सबसे उच्चतर वेदी पर समासीन हैं। इन ऋषियों में कपिल, भृगु, वशिष्ठ, याज्ञवल्क्य तथा गौतम आदि ब्रह्मर्षि थे, जो सूक्ष्मतर स्तरों में समासीन होकर सम्पूर्ण सृष्टि को धारण किये हुए हैं।

एक दिन बन्धु कर्जन पार्क में कालीदा को ज्ञान एवं योग की उच्चस्तरीय बातें बता रहे थे। चलते समय उन्होंने कालीदा से कहा कि कल तुम मेरे घर आना, हम तुम्हें शुद्ध देशी घी की खिचड़ी खिलाएँगे। आजकल शुद्ध देशी घी तो मिलता नहीं, परन्तु एक गरीब ग्वालिन है, हम उसे माँ कहकर सम्बोधित करते हैं, वह थोड़ा सा शुद्ध देशी घी दे गई है। उसी से तुम्हारे लिए खिचड़ी बनाऊँगा। रसोई बनाना मैं बहुत अच्छी तरह जानता हूँ। कालीदा ने बड़ी प्रसन्नता से अपनी स्वीकृति दे दी।

घर जाते समय बेहाला ब्रिज के पास छोटे कर्त्ता से कालीदा की भेंट हो गयी। कालीदा ने कहा कि बन्धु ने खिचड़ी खाने के लिए आमंत्रित किया है, परन्तु आप लोगों का पता मुझे मालूम नहीं। आप लोग इतने ऊँचे स्तर के हैं, कि पता नहीं कि आप लोगों का नाम, पता यह सब कुछ है भी या नहीं।

छोटे कर्त्ता ने कहा- सभी कुछ है भाई। शुद्ध देशी घी वाली खिचड़ी खाने जब आओगे, तब तो समझ ही जाओगे। हम लोग अभी थोड़े दिनों के लिए गंगा के तट पर हावड़ा में रेलवे के किनारे शालीमार गोदाम में हैं। घर का कोई नम्बर नहीं। उसका कोई प्रयोजन भी नहीं, जिन्होंने तुमको आमंत्रित किया है, वे स्वयं

तुमको घर तक पहुँचा देंगे। उन्हें यह भी तो भय रहेगा कि यदि तुम नहीं पहुँचे तो खिचड़ी बरबाद हो जायेगी।

दूसरे दिन कालीदा ने गंतव्य की ओर प्रस्थान किया, जैसे कोई अदृश्य शक्ति स्वयं उनके पैरों को संचालित कर रही थी।

रात्रि का समय। कालीदा शालीमार यार्ड से आगे बढ़ते जा रहे हैं। गृहस्थों के घर आसपास कहीं नहीं हैं। लगभग एक मील चलने के बाद गंगा जी के किनारे एक पुराना मकान दृष्टिगोचर हुआ। कालीदा को ऐसा लगा कि यही मकान है, और वे मकान के अन्दर प्रविष्ट हो गए। अन्दर कमरे के सामने देखा कि बन्धु एक तख्त पर बैठे हुए हैं तथा छोटे कर्त्ता नीचे जमीन में आसन पर बैठकर उनकी स्तुति कर रहे हैं। दोनों आँखों से पुलकाश्रुओं की वर्षा हो रही है।

कालीदा को देखकर बन्धु ने प्रसन्न मधुर स्वर में कहा—वहाँ क्यों खड़े हो। आओ, भीतर आकर बैठो। छोटे कर्त्ता ने उठकर 'आओ, भाई आओ' कहकर कालीदा को आलिंगन- पाश में भर लिया। बहुत से प्रसंगों पर चर्चा चलती रही। इसके बाद कालीदा स्वादिष्ट खिचड़ी खाकर लौट आए।

इसके बाद कालीदा कई बार दिन में तथा रात्रि में उस मकान की तलाश में गए परन्तु वह खोजने पर नहीं मिला।

कालीदा की माँ जैसी गुणवती तथा रूपवती नारी कदाचित् ही दिखाई पड़ती हैं। अंतिम दिनों में वे कालीदा के असंख्य भक्तों की जननीस्वरूपा थीं। सभी यही समझते थे कि माँ मुझे ही सर्वाधिक स्नेह तथा ममता दे रही हैं। माँ के बारे में बन्धु तथा छोटे कर्त्ता कहते कि तुम्हारी जैसी माँ बड़े भाग्यशालियों को ही मिलती हैं। कालीदा की पत्नी भी एक आदर्श नारी थीं। बन्धु तथा छोटे कर्त्ता कहते कि वे एक अतुलनीय सती-साध्वी हैं।

बाद के दिनों में प्रोफेसर या छोटे कर्त्ता ने ही कालीदा के रूपान्तरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इसके पूर्व योगेश्वर बन्धु ने उनमें देवत्व की प्रतिष्ठा कर दी थी। जब छोटे कर्त्ता बन्धु को अध्यात्म की उत्कृष्ट बातें बताते तो कालीदा कहते कि यह तो शायद मुझे पहले से ही मालूम थी। यह बात तो शायद मैंने ही बताई थी। इस प्रसंग में मैंने कुछ अन्य बातें भी बताई थीं, जो इस प्रकार से हैं। बन्धु या छोटे कर्त्ता जो उस समय उपस्थित रहते, वे कालीदा के मेरुदण्ड का स्पर्श करते तथा उनकी पूर्व जीवन की स्मृतियाँ जाग्रत

हो उठतीं। इस प्रकार से कालीदा के पूर्व जीवन का ज्ञान कराकर अध्यात्म की चरम परिणति की भूमिका तैयार हो रही थी।

इस प्रकार से कई वर्ष बीत गए। वन्धु तथा छोटे कर्त्ता के महान् आत्मवल का वरावर सानिध्य लाभ मिलने के कारण कालीपद गुह राय, जिन्हें प्यार से लोग कालीदा कहते थे, आत्मवल, वुद्धिवल तथा मनोवल के उत्तुंग शिखर पर अधीष्ठित हो गए। उनसे ज्ञान, योग एवं प्रेम की त्रिवेणी बहने लगी।

वन्धु तथा छोटे कर्त्ता द्वारा विभिन्न समयों में इंगित व्यापारों से यही प्रकट होता था कि कालीदा अपने एक पूर्व जन्म में याज्ञवल्क्य थे। बन्धु तथा छोटे कर्त्ता जव- तव यह कहते कि पापपूर्ण कलियुग के स्थान पर एक निष्पाप कलियुग का उदय होगा।

❑

सिद्ध देहधारी योगेश्वर

यह योगिराज एक सिद्ध देहधारी तथा कालजयी सन्त थे। इनका दिव्य दर्शन योग की अत्यन्त उच्च अवस्था में स्थित एक केदार नामक बालक को होता था। हो सकता है कि यह योगिराज हिमालय में ही कहीं रहते रहे हों। निवास के सम्बन्ध में जो भी वस्तुस्थिति हो, परन्तु यह सुस्पष्ट है कि ये योगिराज हिमालय के महासिद्धों की तरह योग के एक अति उच्च धरातल पर अधीष्ठित थे।

कथा इस प्रकार से है कि केदार मालाकार सम्भवतः अपने पूर्वजन्म की साधना के कारण योग की अत्यन्त उच्च अवस्था में प्रतिष्ठित थे। वे वाराणसी में रहते थे। विश्व विख्यात विद्वान् पद्मविभूषण गोपीनाथ कविराज केदार से मिलने जाया करते थे।

एक दिन एक महात्मा केदार के पास आया। उसने केदार से कहा कि एक महायोगी ने केदार को बुलाया है। केदार ने उस महात्मा से पूछा कि वे महायोगी कहाँ रहते हैं? उन महात्मा ने वताया कि तुम विशेसरगंज पार करके आगे बढ़ना। इसके बाद थोड़ी देर और आगे चलने पर वे महायोगी तुम्हें मिल जायेंगे।

केदार ने अपराह्न साइकिल से गन्तव्य के लिए प्रस्थान किया। वे मैदागिन होते हुए विशेसरगंज से कुछ आगे बढ़े। आगे चलने पर उन्होंने देखा कि एक मैदान है। उसके बीच में कुछ ऊँची भूमि है। वहाँ पेड़ हैं तथा आश्रम है। केदार खेतों की मेड़ों पर से साइकिल चलाते हुए उस आश्रम में पहुँच गए। वहाँ उन्हें एक महात्मा जी के दर्शन हुए। केदार वहाँ लगभग दो घंटे तक रहे। इसके बाद उन्होंने घर के लिए प्रस्थान किया। जब वे खेतों को पार करके सड़क के किनारे आए तो उन्होंने देखा कि वे वाराणसी से इलाहाबाद जाने वाली ग्रांड ट्रंक रोड पर पहुँच गए हैं, जो कि वाराणसी के पश्चिम में स्थित है, जबकि वे अपने घर से पूर्व की ओर विशेसरगंज की तरफ गए थे।

उन्होंने वहाँ रखे एक प्रस्तर खण्ड को उँगलियों से हटाया। केदार ने देखा कि उसके नीचे एक अपरिमेय विशाल गड्ढा है, जिसमें अनेकों ग्रह-नक्षत्र स्थित हैं। केदार को लगा जैसे कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड ही उसके अन्दर अधीष्ठित है।

इसके बाद योगिराज ने कहा कि क्या तुम अपना घर देखना चाहते हो। केदार ने बड़ी उत्सुकता से कहा—"हाँ"। योगिराज ने अपना हाथ घुमाया। उसको

अपना सारा घर दिखाई पड़ने लगा तथा घर वालों की बात-चीत भी साफ-साफ सुनाई पड़ने लगी।

योगेश्वर ने कहा कि मैं सबके निकट हूँ, फिर भी यह स्थान सबसे दूर है। उन्होंने केदार से कहा कि अब तुम अपने घर लौट जाओ। केदार घर की ओर चल पड़े, परन्तु अब की बार उन्होंने पाया कि वे बी०एच०यू० की तरफ से लंका होते हुए अपने घर की ओर जा रहे हैं। ज्ञातव्य है कि बी०एच०यू० वाराणसी के दक्षिण में स्थित है। केदार को यह बड़ा आश्चर्यजनक लगा कि वे वाराणसी के पूर्व की ओर से जाकर आश्रम पहुँचते हैं, परन्तु जब उसी आश्रम, उन्हीं खेतों से होते हुए वे सड़क पर आते हैं, तो वे कभी बनारस के पश्चिम से आते हैं, तो कभी बनारस के दक्षिण से।

इसके दूसरे दिन इस गुत्थी को सुलझाने के लिए केदार महामहोपाध्याय गोपीनाथ कविराज के पास गए। गोपीनाथ ने केदार से कहा—वे योगिराज जिस आश्रम में रहकर तुमको दर्शन दिये थे, वह सिद्ध भूमि है। उसे एक दृष्टि से सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों कहा जा सकता है। स्थूल इसलिए कि वे महायोगी जिसे चाहते हैं, उसे उसका प्रत्यक्ष दर्शन होता है तथा सूक्ष्म इसलिए कि जन सामान्य को उसका दर्शन नहीं होता। उसकी इसी विशेषता के कारण उसे स्थूल सूक्ष्म दोनों से परे कहकर सिद्ध भूमि कहा जाता है। महासिद्ध महायोगियों में यह क्षमता है कि वे जब जहाँ चाहें वहाँ प्रकट हो सकते हैं, जहाँ चाहें वहाँ जा सकते हैं। उसी सिद्धि के कारण वह भूमि केदार को कभी वाराणसी के पश्चिम पहुँचा देती थी, तो कभी दक्षिण। यह वस्तुतः एक सिद्धाश्रम है, जिस पर भौगोलिक स्थिति का कोई प्रभाव या नियन्त्रण नहीं है। सिद्ध भूमि में सिद्ध देह ही जा सकती है। गोपीनाथ कविराज द्वारा उपर्युक्त प्रकार से समझाने पर केदार सन्तुष्ट हो गए।

पद्मविभूषण गोपीनाथ कविराज ने केदार से कहा कि मुझे भी उन योगेश्वर के दर्शन करा दो। केदार ने कहा कि हम योगेश्वर से प्रार्थना करेंगे। अगली भेंट में केदार ने महायोगिराज से कहा कि प्रभो! वाराणसी में एक प्रकाण्ड विद्वान् तथा साधक गोपीनाथ कविराज रहते हैं। कृपा करके उन्हें दर्शन देने का अनुग्रह करें। इस पर योगेश्वर ने कहा कि मुझे गोपीनाथ कविराज के बारे में जानकारी है। वे एक श्रेष्ठ व्यक्ति हैं परन्तु वे अभी साधना की इतनी गहराइयों में नहीं पहुँचे हैं कि मुझसे मिल सकें।

❑

प्रकाशवान् शरीर वाले योगेश्वर

हिमालय योगियों की खान है। यहाँ इतने महान् योगी हैं, जिनकी सामान्य व्यक्ति कल्पना नहीं कर सकता। जब कोई महायोगी हिमालय जाता है, तो वह जितना अधिक योग की ऊँचाइयों में होता है, उसे उतने ही महान् योगिराजों तथा योगेश्वरों का दर्शन होता है। संत कबीर के अनुसार, "जिन खोजा तिन पाइयाँ, गहिरे पानी पैठि।" जितने ही बड़े योगी से मिलें वह हिमालय के उतने ही उच्च योगिराजों के बारे में बताएगा। स्वामी राम, पायलेट बाबा, योगानन्द परमहंस, पालब्रन्टन, प्रमथनाथ भट्टाचार्य आदि महान् लेखक हिमालय के एक से बढ़कर एक योगियों के बारे में प्रकाश डालते हैं, फिर भी यह सारी जानकारी मिलकर भी शायद हिमालय के योगिराजों के बारे में एक प्रतिशत ज्ञान भी नहीं प्रस्तुत कर पाती। जैसे समुद्र अथाह, अपरिमित है, ऐसे ही हिमालय के योगेश्वरों की शक्ति, सामर्थ्य और शान्ति अपरिमेय है। उनके स्मरण मात्र से शान्ति मिलती है, मानसिक शक्तियाँ ऊर्जस्वित होती हैं। हिमालय के योगियों की सम्पूर्ण शक्ति तथा शान्ति की गहराई को सम्भवतः योगसूत्र के प्रणेता महर्षि पतन्जलि भी पूरी तरह से नहीं समझ पाये होंगे। भारत में हम जिन महान् योगियों के बारे में सुनते या पढ़ते हैं, उनसे भी कई गुना महान् योगेश्वर सुशोभित कर रहे हैं, गिरिराज हिमालय को। बताते हैं कि महर्षि विश्वामित्र ने नई सृष्टि कर दी थी, जब इन्द्र ने राजा नहुष को स्वर्ग नहीं जाने दिया था, परन्तु हिमालय में ऐसे कई महासमाधियों में महालीन योगेश्वर होंगे, जिनकी कृपाकटाक्ष पाने के लिए इन्द्र जमीन पर लेटकर साष्टांग प्रणाम करेगा। वे नई सृष्टि ही नहीं, नया स्वर्ग संकल्प मात्र से बना सकते हैं।

हिमालय में ही दस हजार साल की समाधि लगाने वाले योगिराज भृगु ने भगवान् विष्णु के सीने में लात मारी थी और भगवान् विष्णु ने भृगु का चरण पकड़ कर कहा था कि प्रभो! आपके पैर में कहीं चोट तो नहीं लग गई। पहले लक्ष्मी जी बड़ी रुष्ट थीं, भृगु से, परन्तु आगे चलकर वही पद का प्रहार लक्ष्मी जी के लिए वरदायक सिद्ध हुआ था। यदि इन्द्र कभी भगवान् विष्णु को लात मार दें, तो विष्णु के पार्षद इन्द्र की टाँग तोड़कर फेंक देंगे परन्तु वह दस हजार वर्ष की समाधि का प्रभाव था कि भगवान् विष्णु ने भृगु का पैर पकड़ लिया।

इसी प्रकार से बताते हैं कि एक बार नारद जी ने नाथ सम्प्रदाय के १२ वर्ष तक समाधिस्थ रहने वाले एक योगी को गुप्त तरीके से इन्द्र के अहंकार मर्दन के लिए प्रेरित किया। उस महायोगी ने इन्द्र को युद्ध में बाँध कर डाल दिया। जब इन्द्र ने क्षमा माँगी, तब उन्हें पाश मुक्त किया।

एक-से-एक महाविभूतियाँ पड़ी हैं, हिमालय में। यदि उनका दर्शन हो जाए तो सन्तरी भी मंत्री बन जाएगा। साधक की तुरन्त समाधि लग जाएगी। अनपढ़ भी तत्त्ववेत्ता हो जाएगा। बहरा सुनने लगेगा। गूँगा बोलने लगेगा। मुर्दा जिन्दा हो जायेगा।

आइये, हिमालय के कुछ ऐसे ऋषिराजों के बारे में पढ़कर हम अपने नेत्रों को कृतार्थ करें तथा अपनी शान्ति तथा शक्ति को विकसित करें। बंगाल के एक बहुत बड़े योगी थे—रामठाकुर। आप अपने कमरे को चारों ओर से बन्द किए बैठे हैं परन्तु रामठाकुर सहसा आपके सामने प्रकट हो जायेंगे। आप यदि उच्च साधक हैं, तो सशरीर, योगबल से, आपको तुरन्त एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचा देंगे। आपके रोगों का तुरन्त निवारण कर देंगे। अपने निवास से सहसा अन्तर्धान हो जायेंगे।

१२ वर्ष की अवस्था में रामठाकुर गुरु साक्षात्कार करके तिरोहित हो गये। यह काल १८७२ ई० से लेकर १६०७ ई० तक था। ३५ वर्षों तक वे योग की उत्कृष्टतम साधनाओं तथा महासमाधि में लीन रहे। उनके गुरु से उनकी भेंट १२ वर्ष की आयु में कामाख्या में हुई थी। उनके महागुरु की सिद्ध देह थी। उनका हाड़ मांस का शरीर नहीं था। ३५ वर्षों तक वे हिमालय में गुरुदेव तथा गुरुभ्राताओं के साथ भ्रमण तथा निवास करते रहे।

एक बार ४ व्यक्तियों के साथ एक बहुत लम्बी एवं अंधकारपूर्ण सुरंग को पार करके कई दिनों तक यात्रा करते-करते वे एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ न दिन मालूम पड़ता था और न रात्रि। गोधूलि जैसा मृदु आलोक निरंतर फैला रहता था। कुछ आगे बढ़ने पर उन्हें यह ज्ञात हुआ कि वह प्रकाश कहीं बाहर से नहीं आ रहा था। कुछ आगे बढ़कर एक परम निर्जन अंधकार युक्त स्थान में एक योगिराज बैठे हुए थे, वह प्रकाश उन्हीं के शरीर से निकल रहा था।

राम ठाकुर के दो अन्य दिव्य स्थानों के दर्शन का वर्णन भी उपलब्ध है। एक स्थान न तो हिम से आच्छादित रहता है और न वृक्षों से ही। यहाँ की भूमि श्वेत स्फटिक जैसी है! बड़ा सा मैदान है। वहाँ पर चारों कोनों में खम्भों पर पत्थर रखे हुए थे। इससे थोड़ा सा ऊपर एक आसन था। उस पर

एक समाधि में लीन महायोगिराज बैठे हुए थे। उनका अत्यन्त सुन्दर मुखमण्डल जटाओं से घिरा हुआ था। एक दिव्य देवी मूर्ति उन्हें एकटक देख रही थी। महायोगी रामठाकुर ने वहाँ पाँच दिन बिताए। आश्रम से कुछ दूरी पर एक सोता था, वहीं से जल भर लाते थे। एक द्वादश वर्षीया पहाड़ी बालिका वहाँ एक पहाड़ी गीत गाती हुई आती थी। वह नृत्यगान करती हुई महासमाधि में लीन योगेश्वर को पुष्पमाला पहनाती थी। संध्या को वह बालिका लौट जाती थी। महायोगी राम ठाकुर के मत में ये भगवान् शिव तथा पार्वती जी थीं।

कौशिकी पर्वत पर रामठाकुर को कौशिक आश्रम के नाम से प्रसिद्ध एक अत्यन्त मनोहर स्थान दिखाई पड़ा। यह कमल की आकृति का था और आधा मील तक फैला हुआ था। इसके चतुर्दिक् बर्फ दृष्टिगोचर हो रही थी परन्तु यह विस्मय की बात थी कि आश्रम के अन्दर बर्फ नहीं थी। भूमि शिलामय थी। इसके नीचे मंदाकिनी नामक नदी बड़े वेग से बह रही थी। इसे पार करना बड़ा दुष्कर था। शिलाखण्डों पर पैर रखकर बड़ी कठिनाई से निकलना पड़ता था। इस आश्रम में तेरह आसन विन्यस्त थे। इनमें से १० आसन इस प्रकार से स्थित थे कि उन पर बैठे व्यक्ति एक दूसरे को देख नहीं सकते थे। शेष तीन आसन इस प्रकार से बने हुए थे कि दशों स्थानों में बैठे व्यक्ति इन्हें देख सकते थे। महायोगी ने दशों आसनों पर योगेश्वरों को समाधि में बैठे देखा। वे परम प्रशान्त मुद्रा में थे तथा उनके शरीर स्पन्दन शून्य थे। उन लोगों के हाथ नीचे थे। उनकी त्वचा कर्कश और कहीं-कहीं फटी थी। किसी-किसी की जटाएँ खुलकर कन्धों पर फैलकर शोभायमान हो रही थीं। वे योगेश्वर इतने दीर्घकाय थे कि उनके बैठे होने पर भी उन्हें माला पहनाने के लिए महायोगी रामठाकुर को शिलाखण्ड पर खड़ा होना पड़ता था। उनके नेत्र पलकों की लटकती हुई त्वचा से आवृत थे। नेत्र गोलकों के अन्दर छः इंच की गहराई में पुतलियाँ चमकती हुई दृष्टिगोचर होती थीं। उनके मुखमण्डलों पर लाली विराजमान थी। वे कितने युगों से इस स्थान पर बैठे हुए थे, इसका सही अनुमान नहीं किया जा सकता था। प्रखर तपस्या एवं समाधि के कारण इनका शरीर चिन्मय हो गया था। खाली तीन आसनों के महात्मा सम्भवतः लोक मंगल के लिए कहीं अन्यत्र गए हुए थे।

इस परम पावन आश्रम में महायोगी रामठाकुर पन्द्रह दिनों तक रहे। वे नियमित रूप से आश्रम में संध्या समय फलाहार रख आते थे। दूसरे दिन प्रातः उपस्थित होने पर उन्हें छिलके पड़े मिलते थे। पन्द्रह दिनों तक स्वनामधन्य

रामठाकुर महाशय ने इन योगेश्वरों के शरीर में कोई गति, कोई स्पन्दन नहीं देखा। सोलहवें दिन प्रस्थान के समय उन्होंने जब इन दिव्य मुनियों को साष्टांग प्रणाम किया तो उन महाब्रह्मर्षियों ने हाथ उठाकर अभय मुद्रा प्रदर्शित कर आशीर्वाद दिया। महायोगी रामठाकुर के अनुसार यहाँ से मान सरोवर बहुत दूर उत्तर में स्थित है।

वस्तुतः यह एक दिव्य आश्रम था, जहाँ प्रत्येक आदमी प्रवेश नहीं पा सकता। यहाँ केवल महासिद्ध तथा महाज्ञानी एवं सिद्ध देहधारी ही जा सकते हैं।

इस प्रकार से आप्तकाम, पूर्णकाम योगिराज रामठाकुर के माध्यम से हमें हिमालयस्थ इन तीन दिव्य स्थलों की जानकारी प्राप्त होती है।

❑

समाधिस्थ योगिराज

योगिराजों का घर है, बेडरूम है हिमालय। जैसे हम लोग शहरों में अपने मकानों में रहते हैं, तथा अन्य स्थानों की अपेक्षा हमें अपने घर में बड़ा आराम, आनन्द और शान्ति मिलती है, बेडरूम में बिस्तरे पर लेटने पर थकान मिट जाती है, इसी प्रकार से महायोगियों को हिमालय में पर्वतराज की गुफाओं में परमानन्द, शाश्वत शान्ति, आत्यन्तिक निवृत्ति की प्राप्ति होती है। यहाँ कोई महायोगी महासमाधि में लीन है, तो कोई हिममंडित पर्वत श्रेणियों का आनन्द ले रहा है, तो किसी परमतत्त्ववेत्ता को सर्वत्र चैतन्य सत्ता की अनुभूति हो रही है। यहाँ कोई योग के शिखर पर सुशोभित है, कोई तंत्र के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर रहा है, तो कोई विज्ञान के रहस्यों की जानकारी प्राप्त कर रहा है। उच्च साधना स्थितियों में विराजमान अनेकों महासिद्ध, महायोगी, परमज्ञानी एवं सिद्ध तांत्रिक शोभायमान कर रहे हैं, हिमालय को।

पुराणों में वर्णित कैलाश पर्वत के दक्षिण की ओर अत्यंत उच्च तथा आकर्षक दक्ष पर्वत विराजमान है। इस पर्वत में अनेकों महायोगी समाधिस्थ हैं। लोगों का कहना है कि यहाँ पारस पत्थर की खानें हैं, जिसके स्पर्श से लोहा सोने में परिवर्तित हो जाता है। यह पौराणिक मान्यता है कि यहाँ दक्ष की पुत्री गौरी उत्पन्न हुई थीं जिनका कैलाश में रहने वाले शंकर जी से विवाह हुआ था।

कुछ साधक एक दिन दक्ष पर्वत पर गये हुए थे। एक स्थल पर उन्हें एक भव्य एवं विशाल गुफा दृष्टिगोचर हुई। उन लोगों ने देखा कि गुफा के बाहर एक वृद्ध महायोगी समाधि में लीन हैं। उनके दोनों नेत्र बन्द थे। मुखमण्डल पर दिव्य शान्ति शोभायमन. थी। शान्ति तथा चेतना उनके शरीर से निकलकर आकाश मंडल में व्याप्त हो रही थी। उनके सम्पूर्ण शरीर से आभा प्रस्फुटित हो रही थी।

आगन्तुक लोग उनकी समाधि खुलने की प्रतीक्षा में महायोगी जी के पास ही पूरी रात्रि बैठे रहे। महायोगी निस्पन्द शरीर से आँखें बन्द किये हुए समाधि में ही लीन रहे।

सूर्योदय होने पर प्रतीक्षारत लोगों ने देखा कि एक १३-१४ वर्षीय अनुपम सुन्दरी. दिव्य कन्या चली आ रही है। उसके दर्शन से शान्ति तथा चैतन्य की उपलब्धि हो रही थी। उसके सम्पूर्ण शरीर से दिव्य कान्ति विकीर्ण हो रही थी। मन बरबस उसकी ओर खिचा जा रहा था। वह साधकों के मन में पवित्रता, दिव्यता

तथा दैवी आनन्द का भाव जाग्रत कर रही थी। सभी लोग उसे मंत्रमुग्ध होकर देख रहे थे।

वह अनिन्द्य सुन्दरी, पावनता की मूर्ति अपने एक हाथ से बगल में जलकलश दबाए हुए थी। वह बाल सुलभ भंगिमा के साथ समाधिस्थ योगिराज के पास गई। उसने हौले से कलश का जल योगिराज के सिर पर डालकर उन्हें स्नान कराया। योगी जी के पास में ही रखे हुए एक मृगछाला से उनके शरीर को पोंछा, बैठे हुए साधकों की ओर दयादृष्टि से देखा, इसके उपरान्त जैसे आई थी, वैसे ही चली गई।

प्रतीक्षारत लोग उस कन्या के सिर के पीछे बन रहे प्रकाश के प्रभामंडल से इतना तो जान गये कि वह कोई देवकन्या है, परन्तु वह कौन है, किसकी पुत्री है, योगी जी को क्यों स्नान कराती है —आदि अनेक जिज्ञासाएँ उनके मानसपटल पर उठती रहीं। उन्होंने चाहा कि वे उस देवकन्या से उसके बारे में पूछें परन्तु उनके मुख से शब्द ही नहीं निकले, और वह शान्ति, चेतना तथा सौन्दर्य की दिव्य मूर्ति योगिराज को स्नान कराकर चली गई।

दिन में लगभग ग्यारह बजे योगिराज की समाधि खुली। कुछ बातचीत के बाद ये लोग उस चैतन्य की मूर्ति, सौन्दर्य की पराकाष्ठा देवकन्या के बारे में पूछना चाहते थे, किन्तु योगिराज ने उनसे कहा कि पहले नीचे से वह कंकड़ उठा लाओ। वे जब कंकड़ उठाकर लाए तो वापस आकर देखते हैं कि योगिराज पुनः समाधि में लीन हो गए। नेत्र बन्द। सम्पूर्ण शरीर निस्पन्द। मुखमण्डल पर एक दिव्य छटा। शान्ति के गहन भाव चारों ओर विकीर्ण हो रहे हैं।

साधकगण पुनः प्रतीक्षारत हो गए। वे उस दिन भी पूरे समय तथा सम्पूर्ण रात्रि प्रतीक्षारत रहे। महायोगी माया से परे होकर परमतत्त्व में लीन रहे। उनके प्रशान्त मुखमंडल को देखकर परम आह्लाद की प्राप्ति हो रही थी। सिद्धलोक-सी प्रशान्ति वहाँ छायी हुई थी।

सूर्योदय हुआ। जब भुवनभास्कर की रश्मियाँ हिम पर पड़ रही थीं, तो ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो वह क्षेत्र सोने से बनाया गया हो। बर्फ मंडित शिखरों पर एक मनभावन छटा छायी हुई थी। तभी उन लोगों ने देखा कि वह चैतन्य की मूर्ति, शोभा की मूर्ति रूप, सौन्दर्य की साक्षात् प्रतिमा, पवित्रता का उद्गम स्रोत वह दिव्य बालिका अपनी मनभावनी छटा के साथ चली आ रही है। उसे देखकर प्रतीक्षारत साधकगण मंत्रमुग्ध से हो गए। वह दिव्यकन्या आगे बढ़ी। उसने कलश से योगिराज के सिर पर पुनीत जल की धारा छोड़ी। पुत्री

तुल्य, उन्हें स्नान कराया। पास में रखे हुए मृग चर्म से उनके शरीर को पोंछा। इसके बाद हौले से चली गई। वहाँ बैठे लोगों ने बहुत चाहा कि वे उस दिव्यबाला से पूछें कि वह कौन है, परन्तु वे मंत्रकीलित से बैठे रहे। उनके मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। वह बालमृगनयनी जैसे आई थी, वैसे ही योगिराज को स्नान कराकर शान्तिपूर्वक चली गयी।

उस दिन अपराह्न लगभग दो बजे योगिराज की समाधि खुली। उन्होंने प्रतीक्षारत लोगों की ओर इंगित करके पूछा कि वे कंकड़ उठा लाएँ। उन्होंने कहा कि हम तो उसे उसी क्षण उठा लाए थे। वे लोग जान गए कि उनके लिए जो एक क्षण है, योगी जी के लिए वही २७ घंटा है।

बाद में पता चला कि एक बार यह योगिराज भगवान् शिव की उपासना कर रहे थे। शंकर तथा गौरी उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर उनके सामने प्रकट हुए। योगिराज ने गौरी को बेटी कहा। तबसे गौरी उनको अपने पितातुल्य मानने लगीं तथा उनकी देखभाल में दत्तचित्त रहती हैं। वे गौरी ही कन्या के रूप में समाधिस्थ योगिराज को स्नान कराने आई थीं।

❑

महासमाधि में लीन योगेश्वर

चिन्तन की सर्वोच्च उपलब्धि है—-तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञान के बाद परमपद में स्थिति बनाने के लिए- आवश्यक है ध्यान। ध्यान की चरम परिणति है समाधि। समाधि एक दिन की, एक माह की, एक वर्ष की, एक शताब्दी की, एक सहस्राब्दी की या उससे भी बड़ी हो सकती है। इन्द्र से बड़े हैं- ब्रह्मा, ब्रह्मा से बड़े हैं- विष्णु, विष्णु से बड़े हैं- शिव। सम्भवतः एक विष्णु या शिव की अतुलनीय आयु समाप्त होने पर जब दूसरा विष्णु या शिव बनता होगा, तो महासमाधि में लीन योगेश्वर ही विष्णु व शिव बनते होंगे।

महासमाधि में लीन योगी क्या नहीं कर सकता। आशीर्वाद मात्र से आपको मिनिस्टर बना सकता है। उसकी कृपा कटाक्ष से आप अरबपति हो सकते हैं। उसके अनुग्रह से आपका बेटा आई०ए०एस० बन सकता है, आपकी बेटी की शादी अति श्रेष्ठ घराने के सुयोग्य लड़के से हो सकती है। मुर्दे जिन्दा हो सकते हैं, बहरे सुनने लगते हैं, गूँगे बोलने लगते हैं। युद्धों की विभीषिका समाप्त होने लगती है, जन समुदाय में शान्ति, प्रेम, आनन्द चैतन्य तथा जागृति का प्रचार होता है।

हिमालय तो घर है- महायोगियों का, योगेश्वरों का, पता नहीं कौन योगी कहाँ महासमाधि में लीन होकर किस कन्दरा में बैठा है।

हिमालय में राजकीय अभियन्ताओं द्वारा सड़क बनायी जा रही थी। इसके लिए पहाड़ों को डाइनामाइट लगाकर तोड़ा जा रहा था। बड़ी-बड़ी चट्टानें, मानो इन्द्र के वज्र से टूट-टूट कर इधर-उधर गिर रही थीं। तभी डाइनामाइट के प्रहार से एक पर्वतखण्ड टूटकर इधर-उधर बिखर गया परन्तु यह क्या! उसी पर्वत खण्ड में एक कन्दरा में एक महायोगेश्वर महासमाधि में लीन होकर बैठे हुए थे। अब उनकी समाधि खुल गई थी। अभियन्तागण दौड़कर आ गए। साष्टांग प्रणाम करके लेट गए, महायोगेश्वर के चरणों में। योगेश्वर के अंग प्रत्यंग से आभा फूट रही थी। परम शक्ति विकीर्ण हो रही थी, उनके चारों ओर। उनके आस-पास सिद्ध लोक जैसी दिव्य शान्ति विराजमान थी। वहाँ उपस्थित सारा जनसमुदाय योगेश्वर के परम पावन चरणों में नत हो गया। लोग अपने जीवन को धन्य मानने लगे। आस-पास से स्त्री पुरुष दौड़-दौड़ कर आने लगे।

योगी जी देववाणी संस्कृत में लोगों से कुछ पूछ रहे थे, परन्तु उनकी भाषा कोई समझ नहीं रहा था। लोगों ने बुद्धिमानी का परिचय दिया। वे पास के एक

पहाड़ी गाँव से एक संस्कृत के विद्वान् को बुला लाए। शास्त्री जी के आने पर पता चला कि महायोगेश्वर पूछ रहे थे- यह कौन सा युग है? शास्त्री जी ने उन्हें सादर निवेदित किया कि यह कलियुग है। न जाने महायोगेश्वर किस युग में समाधि में बैठे थे। कितनी शताब्दियाँ बीत गई थीं समाधि लिये हुए।

सम्भवतः समाधि लेने के पहले उन्होंने शरीर रक्षा का संकल्प कर लिया होगा। इसी कारण उनका शरीर सुरक्षित था। डाइनामाइट तथा पत्थर की चट्टानें तो क्या, उनके शरीर को एटम बम भी नुकसान नहीं पहुँचा सकता था। विष भी अमृत बन जाता, उनके पास पहुँचकर।

आस-पास के गाँवों से झुण्ड के झुण्ड नर-नारी, बालक-वृद्ध योगेश्वर का दर्शन करते रहे। योगेश्दर दो दिन तक उसी स्थान पर रहे। फिर सम्भवतः उन्हें भीड़ अच्छी नहीं लगी तथा वे उठकर हिमालय के बर्फीले निर्जन पहाड़ों की ओर चले गये। कुछ समय बाद उपयुक्त कन्दरा खोजकर सम्भवतः वे पुनः महासमाधि में लीन हो गये होंगे।

❑

परमानन्द अवधूत

सुन्दरनाथ जी के प्रसंग में यह आया है कि जब पायलट बाबा को ४ दिनों तक बद्रीनाथ क्षेत्र में किसी महायोगी के दर्शन नहीं हुए तो उन्हें शंका होने लगी कि बद्रीनाथ क्षेत्र में सिद्ध सन्त हैं अथवा नहीं। पाँचवें दिन जब उन्होंने अपनी संकल्प तरंगों को वायुमण्डल में भेजा तो उन्हें सुन्दरनाथ व सर्वेश्वरानन्द जी ने दर्शन दिये। उसके दूसरे दिन उन्हें परमानन्द अवधूत का दर्शन हुआ। आगे का विवरण पायलेट बाबा के ही शब्दों में पढ़ें।

हम स्नान आदि से निवृत्त होकर अलकनन्दा के किनारे टलहने लगे। फिर जब विरला धर्मशाला की ओर जाने लगे, तभी हमने देखा कि पत्थर के किनारे खड़े एक सन्त हमें बुला रहे थे। आज भी हमने वही कपड़े पहन रखे थे, जो कल पहने थे। हम तीनों बाबा के पास पहुँच कर चरण स्पर्श कर बैठ गए। बाबा दो पत्थरों के बीच बैठे थे। एक कौपीन पहने हुए। गीता का गुटका उनके हाथ में था। शरीर साँवला था। शरीर और ललाट से दिव्य छटा विकीर्ण हो रही थी। मृदु भांषा में उन्होंने पूछा—कल का दिन अच्छा रहा होगा। मन में जिज्ञासा और अविश्वास की रेखाएँ खिंच गई थीं। अब वे समाप्त हो गई होंगी। जलन को शीतलता प्रदान करना ही श्रेष्ठ महापुरुषों का काम है। बाबा सुन्दरनाथ तो आजकल के लिए कल्पना हैं। वे स्वप्न के सदृश हैं। बहुत कम दिखाई पड़ते हैं। सर्वेश्वरानन्द जी का यदा-कदा दुर्लभ दर्शन हो जाया करता है। मैं आपको तीन दिन से ज्यादा बेचैन स्थिति में आते-जाते देख रहा था। पर मैं आपके संकल्पों को तोड़कर आने में समर्थ नहीं था। मैं सम्बन्धों से अभी मुक्त नहीं हुआ हूँ। आपका उन्हीं दिव्य महापुरुषों से सम्बन्ध रहा है। मैंने आपको उचित सेवा और सानिध्य प्राप्त करने के लिए आवाज दी है। मुझे परमानन्द उदासीन कहते हैं। मैं कश्मीर से लेकर गंगोत्री, केदारनाथ, बद्रीनाथ और ग्लेशियर में घूमता रहता हूँ। तपोवन, नन्दनवन और लक्ष्मीवन की गुफाओं में पड़ा रहता हूँ। यहाँ निरापद अद्वैत वृत्तियों में पड़ा रहकर सांसारिक कर्मों के बन्धन से मुक्त होने का प्रयास कर रहा हूँ। पर संस्कार अभी तक सजीव ही होते जा रहे हैं। अब जब आप १६७८ के सितम्बर में गंगोत्री आयेंगे, तब मैं तपोवन, नन्दन वन के बाद आपसे मिलूँगा। तब हम लोग हिमालय के हिम मंडित शिखरों पर कुछ रातें बातों में बिताएँगे—और सूक्ष्म जगत् का अध्ययन करेंगे। मैंने पूज्य बाबा परमानन्द जी से जल में समाधिस्थ होने की कुछ क्रियाओं पर पहल कराई। पुनः मिलने और सानिध्य प्राप्त करने की आशा लेकर हम लोग चल दिए। ❑

हेड़ियाखान बाबा

हेड़ियाखान बाबा हिमालय के बहुचर्चित, लब्धप्रतिष्ठ, अत्यन्त सम्मानित तथा महासिद्ध सन्तों में थे। वे योग, प्रेम तथा साधना के मूर्तिमन्त रूप थे। जन सामान्य को अध्यात्म की ओर प्रेरित करने के लिए वे चमत्कारों की जैसे पोटली लेकर घूमते थे। वे यदाकदा हलद्वानी से अपने भक्तों के साथ कुछ मिनटों में ही योगबल से हरिद्वार पहुँच जाते थे तथा वहाँ भक्तों को गंगा स्नान कराकर कुछ मिनटों में पुनः वापस आ जाते थे। कुमायूँ के जन-जन में वे अपनी उदारता, दया, करुणा तथा प्रेम के लिए प्रसिद्ध थे। वे पंचाग्नि तापते थे। कभी गुफाओं, मठों, मन्दिरों में रहते थे, तो कभी भक्तों के घरों पर कई-कई दिनों तक रुके रहते थे। अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल के अनेकों घर उनकी चरणरज से पवित्र हुए थे। उनमें अतुलित योग सामर्थ्य था। वे गाय का रूप धारण करके लोगों का खेत चर जाते थे और कुछ कहने पर बाबा बनकर हाथ जोड़कर खड़े हो जाते थे। पायलेट बाबा के मतानुसार अमर कृपाचार्य ही हेड़ियाखान बाबा के रूप में लोगों में योग तथा अध्यात्म का त्वरित गति से प्रचार करने के लिए रह रहे थे।

जब उस क्षेत्र में हेड़ियाखान बाबा ने योग का पर्याप्त प्रचार प्रसार कर दिया तथा लोगों का आना-जाना इतना ज्यादा बढ़ गया कि आस-पास माया जाल फैलने लगा। तब उन्होंने अपने हेड़ियाखान रूप को अदृश्य करने का निश्चय किया। उन्होंने लोगों से बता दिया कि अब वे लुप्त होंगे। उन्होंने इस कार्य के लिए एक दिवस नियत कर दिया। वर्षा के कारण नदियों में बाढ़ आई हुई थी। वे धीरे-धीरे जौल देवी संगम की ओर चल पड़े। काली गंगा तीव्र वेग के साथ बढ़ रही थी। सहस्रों लोग उनके पीछे-पीछे चल रहे थे। लोग बेचैन तथा निराशाग्रस्त थे। पायलट बाबा के शब्दों के अनुसार, मैं धीरे-धीरे धारचुला से नेपाल में लगी जौल देवी की ओर सिर झुका कर जा रहा था। बैजनाथ गिरि, सीताराम बाबा, महादेवगिरि, नारायण स्वामी, लटूरिया बाबा और सोमवारी बाबा भी मेरे साथ थे। मैं संगम पर जाकर रुक गया। मैंने कैलाश की ओर देखा। राह पर जाने वाले यात्रीगण स्तब्ध होकर रुक गए थे। नेपाल तथा कुमाऊँ के लोगों से वह स्थल भर गया था। अब बरसात रुक गयी थी। सूरज बादलों की ओर से अस्ताचल की ओर जा रहा था। संध्या होने वाली थी। मैं थोड़ी देर तक बैठा सूरज ढल जाने की प्रतीक्षा करता रहा। ज्यों ही सूरज ढला, मैं उठकर खड़ा हो गया। जन समुदाय भी उठकर खड़ा

हो गया। सभी रो रहे थे। महिलाएँ करुण क्रन्दन कर रही थीं। मै शांत चित्त होकर जल समाधि के लिए चल पड़ा। मैं अथाह पानी में उतरता गया। धीरे-धीरे मैं जलराशि में खो गया। संगम में कालीगंगा मुझे अपनी गोद में लेकर बह चली। मैं दुनिया के समक्ष जल-समाधि ले चुका था तथा मेरा शरीर वह रहा था। मैं अपनी चेतना में था। निशा अँधेरा फैलाने लगी। नदी उमड़ रही थी। मैं पंचेश्वर आकर नदी से बाहर निकल कर आ गया। एक ओर नेपाल था, दूसरी ओर गोरखधुनी मुझे अपनी ओर खींच रही थी। उस स्थान पर कोई नहीं था। उस क्षेत्र के लोग मुझे नहीं जानते थे। मैंने गङ्गा को सारे वस्त्र भेंट कर दिये। अब मैं हेड़ियाखान नहीं था। गोरखनाथ की धुनी पर आकर कुछ दिनों वहीं विश्राम किया। लोगों का आना-जाना शुरू हुआ तो वहाँ से मैं द्रोणगिरि अपनी गुफा में आ गया और चिरकाल के लिए समाधिस्थ हो गया।

❑

योगिराज सुन्दरनाथ

सुन्दरनाथ जी प्रायः हिमालय में ही रहते हैं। वे अधिकाशंतः ध्यानस्थ तथा समाधिस्थ पाये जाते हैं। वे आत्मलीन महायोगी, महासिद्ध सन्त हैं। हिमालय में भी वे अधिकतर बद्रीनाथ क्षेत्र में ही रहते हैं। बद्रीनाथ क्षेत्र में जाने वाले तथा रहने वाले महान् साधकों को उनका मार्गदर्शन प्राप्त होता है। इन्हीं महासाधकों के माध्यम से वे अपना मानव हितकारी सन्देश भारत भूमि एवं विश्व के लोगों तक पहुँचाते हैं।

भारत के लाखों लोगों द्वारा जाने जानेवाले पायलेट बाबा अपनी उच्च साधना के समय ज्यादा करके हिमालय में पिण्डारी ग्लेशियर क्षेत्र में रहते थे। वे एकबार वीरेन्द्र तथा ऐश्वर्य राजलक्ष्मी के साथ हिमालय के बद्रीनाथ क्षेत्र में गये हुए थे। बद्रीनाथ-केदारनाथ क्षेत्र महायोगियों, महासिद्धों, सिद्ध देहधारियों के लिए मशहूर है। पायलेट ने सोचा था कि पुनीत बद्रींनाथ क्षेत्र में जाने पर किसी न किसी महासिद्ध का दर्शन अवश्य होगा। ४ दिनों तक उन्हें किसी भी महायोगी के दर्शन नहीं हुए। अतः उन्हें यह सन्देह होने लगा कि क्या यह बात सच नहीं है कि इस पावन भूमि में अनेक महासिद्ध निवास करते हैं! पाँचवें दिन पायलेट बाबा ने अपनी मनोकामना की तरंगों को वहाँ के आकाश मंडल में सम्प्रेषित किया कि यदि कोई महासिद्ध यहाँ है, तो उन्हें दर्शन दे। पायलेट ने एक तरह से इस पुण्य क्षेत्र में रहने वाले सिद्धों को चुनौती दे दी। उन्होंने वीरेन्द्र से कहा कि आओ आज देखते हैं कि क्या बद्रीनाथ सचमुच ऋषि-मुनियों की तपस्थली है या मात्र हिन्दू धर्म का एक तीर्थस्थल, परम्परा का एक प्रतीक है, जहाँ स्वार्थी तत्त्व धर्म और ईश्वर को व्यापार बना लेते हैं। वे लोग बाजार के रास्ते से नीलकंठ घाटी की ओर चल पड़े। चरणपादुका पर थोड़ी देर रुककर आगे बढ गए। गंगा के किनारे-किनारे चलने लगे। बर्फ बहुत थी। वीरेन्द्र तथा उनकी पत्नी को परेशानी हो रही थी, पर पायलेट बाबा चलते ही रहे। ग्लेशियर के बहाव को पार करके एक मैदान मे पहुँचे। दोनों पति-पत्नी थक गये थे। घाट पर बैठकर आनन्द लेने लगे।

पायलट थोड़ा और आगे बढ़ते पर, तभी सम्पूर्ण घाटी आवाज से गूँजने लगी—महात्मन् कपिल! महात्मन् कपिल! महात्मन् कपिल! आप इधर आएँ। उत्तर दिशा की ओर जिधर हिमालय झुक रहा है, सागर को सन्देश देने के लिए। नीलकंठ सिर उठाये आकाश को देख रहा है, सागर का सन्देश पाने को। पायलट

बाबा रुक गये। उन्हीं के शब्दों में (उन्होंने) उत्तर दिशा की ओर देखा। ऋषि गंगा का स्वच्छ सुन्दर जल बहता चला जा रहा था, हिमालय के हृदयस्पर्शी पत्र को लेकर। उसके किनारे पत्थर की चट्टान पर एक भव्य मूर्ति महायोगी खड़े पूरब की ओर हाथ उठाये आवाज दे रहे थे। उन्हीं की आवाज से सम्पूर्ण घाटी गूँज रही थी। बड़ा ही भव्य शरीर था। कानों में कुण्डल, बड़ी-बड़ी जटाएँ, आँखों में दिव्य ज्योति लिये योगी शांत चित्त से बैठे थे। शरीर स्थूल था, सिर झुककर भूमि में कुछ खोजने का प्रयास कर रहा था। जटाएँ एक तरफ से लटक कर पत्थर को स्पर्श कर रही थीं। वे नाथयोगी थे मन्द-मन्द मुस्कान के साथ उन्होंने हमारा स्वागत किया। 'आओ देव! जिसके साथ स्वतः प्रकृति है। सागर की पुत्री लक्ष्मी, सम्पूर्ण ऐश्वर्यों से युक्त, कौन रोक लेगा हिमालय के प्रांगण में भ्रमण करके तपस्यारत महात्माओं का प्रत्यक्ष दर्शन करने से? इधर प्रकृति है, उधर पुरुष। यही क्षीर सागर की कन्या कला है! प्रकृति स्वरूपा लक्ष्मी है। महात्मन्, आपने इन सन्देशवाहकों से कहा होता जो सागर में जाकर लुप्त हो जाते हैं। वहाँ से निकलकर, आकाश में बादल बनकर उनकी बूँदें, हमें आप का सन्देश पहुँचा जातीं। आपने इस गंगा से कहा होता। आपकी भाव-तरंग यह मेरे पास पहुँचा जाती। परम पावन गंगा की लहरें और आपकी विचार-तरंगें एक-दूसरे का सहयोग करतीं। बद्रीनाथ हिमालय में है, न कि हिमालय बद्रीनाथ में। बद्रीनाथ प्रतीक है, आस्था का, विश्वाश का, हिमालय सत्य है- जीवन का ।

योगिराज आप अपनी संकल्प शक्ति का प्रयोग केवल कल्याणमयी भावनाओं के लिए ही किया करें। विचार-तरंगों को प्रत्येक अवसर पर प्रवाहित न किया करें। आप यहाँ पर तो बद्रीनाथ के महात्माओं की परीक्षा ले रहे हैं, परन्तु भविष्य में ऐसा न करें। मैं सुन्दरनाथ हूँ। मेरा अंतीत वर्तमान सब इसी बद्रीनाथ में सजीव है। मैं हिमालय में रहता हूँ । बद्रीनाथ खण्ड है। इसी तरह आप भी हिमालय में रहते हैं, पर पिंडारी ग्लेशियर खण्ड के जाने जाते हैं।

'आइए हम लोग गुफा की ओर चलें। वहीं कुछ बातें होंगी।' सुन्दरनाथ जी का अनुगमन करते हुए हम लोग चल पड़े। चट्टान मे हटकर बर्फीली चोटी की छाँव में गुफा थी। पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानों के मध्य प्रकृति अपना अद्भुत सौन्दर्य बिखेर रही थी। पुष्पों ने अपने सौन्दर्य से स्वागत किया। गुफा बड़ी थी। प्रकृतिक साधनों से वह युक्त थी। हम तीनों गुफा में बैठे गये। बाबा यहाँ भी पत्थर की एक चट्टान पर ही बैठे। कुछ मेवा के सदृश फल और शहद हमारे समक्ष रख दिये। फिर विश्व की आधुनिक उपलब्धियों के बारे में चर्चा करने लगे। विश्व कहाँ जाना

चाहता है और कहाँ जाकर अपना विनाश कर लेगा। प्राकृतिक छेड़-छाड़ ही विश्व के विनाश का कारण बनेगी। ये अन्तरिक्ष को छेड़ रहे हैं। मंगल, चन्द्रमा, बृहस्पति को अपनी जासूसी का केन्द्र बनाना चाहते हैं। सूर्य की ऊर्जा से अपना काम करना चाहते हैं और एक दिन ऊर्जा शक्ति ही इनका विनाश करेगी। प्रकृति जन्म देती है और वही भोग के साधनों को इकट्ठा कराकर, विवेक-रहित होने पर नाश भी कर देती है।

ये वातें चल ही रही थीं कि योगिराज सर्वेश्वरानन्द जी का भी शुभागमन हो गया। उन्होंने भी पायलेट, वीरेन्द्र तथा लक्ष्मी को अपने उत्कृष्ट विचारों से अवगत कराया।

इस प्रकार से योगिराज सुन्दरनाथ ने पायलेट बाबा के हृदय में बद्रीनाथ क्षेत्र के वारे में श्रद्धा जगाई तथा उन्हें सतत मंगलमय पथ पर चलने की प्रेरणा दी।

❑

बाबा रामदास बैरागी

रामदास जी पहले समान्य लोगों की तरह रहते थे। समाज के लोगों में जैसे प्रेम, झगड़ा आदि बातें होती हैं, वे बातें उनमें भी थीं परन्तु धीरे-धीरे साधना के पथ पर अग्रसर हो जाने के बाद उनका सम्पूर्ण जीवन साधनामय हो गया। वर्तमान में योग की पराकाष्ठा समाधि में उनकी सहज गति है। वे लम्बी-लम्बी अवधियों के लिए समाधिस्थ हो जाते हैं। पायलट बाबा से उनकी भेंट बहुत वर्ष पूर्व दिल्ली में हुई थी। उस समय कुछ सामान्य बाबा लोग उन्हें अपने स्वार्थ साधन के लिए अमेरिका ले जाना चाहते थे परन्तु उस समय पायलट बाबा को दीक्षा लिये हुए कुछ ही समय हुआ था। अतः रामदास बाबा चाहते थे कि पायलट बाबा अमेरिका न जाएँ क्योंकि इससे साधना में विघ्न पड़ सकता था। अन्ततः रामदास बाबा अपने प्रयास में सफल हुए। वे पायलट बाबा को साथ लेकर दिल्ली से चल दिए। इसका तथा इसके बाद का विस्तृत विवरण पायलट बाबा के ही शब्दों में पढ़िए।

एक बैरागी सन्त का आगमन कुटिया पर हुआ। उस दिन कुटिया पर ३० महात्मा आए हुए थे। सभी नागा संन्यासी थे। एक वही राम उपासक बैरागी संत थे। कमर में केवल दो हाथ का कपड़ा लपेटे हुए थे। एक तुम्बिया थी। ढाई हाथ का एक बाँस का डंडा हाथ में था। सम्पूर्ण शरीर गंदा था और जगह-जगह पर शरीर कटा हुआ था जैसे किसी ने ब्लेड से चीर रखा हो। महात्मा ने आते ही सभी महात्माओं को साष्टांग प्रणाम किया और सेवा में लग गया। सभी महात्माओं को चाय बनाकर पिलाना, खाना बनाकर खिलाना और सभी के जूठे बर्तनों को साफ करके सभी के आसनों पर दे आना उनका नित्य कर्म था। सभी महात्मा उनकी सेवा से प्रभावित हो गये। मैं संध्या समय राजा साहब की गाड़ी से कुटिया पर लौटा। उस दिन भी मैं शहर गया था। अमेरिका जाने की तैयारी प्रायः पूर्ण हो चुकी थी। टिकट खरीदना बाकी था। सभी महात्मा खुश थे। मेरे आते ही बैरागी संत ने मुझे दण्डवत कर क्रोध भरी दृष्टि से देखा, पर मैं कुछ समझ न सका। रात्रि के दस बजते-बजते सभी संत भोजनादि से निवृत्त होकर सोने की तैयारी करने लगे। गर्मी का मौसम था। कोई समाधि स्थल पर, कोई नीम के नीचे सोने चला गया। मैं भी मृगचर्म को हनुमान मन्दिर के चबूतरे पर बिछा कर लेट गया। आकाश में तारे टिमटिमा-रहे थे। मौसम में गर्मी महसूस हो रही थी और मैं चिंतित, तारों की ओर देख रहा था। सोच रहा था, कहाँ आकर उलझ गया? कैसे इन महात्माओं

से छुटकारा पाया जाए? तारों की दौड़ में मेरा दिमाग भी दौड़-दौड़ कर थक गया। तभी बैरागी संत सभी कार्यों को समाप्त कर मेरे करीब आकर लेट गये। मैं एक बार उन्हें देखकर पुनः आसमान की ओर देखने लगा। तारे मुझसे कुछ कह रहे थे। कुत्ते भौंकने लगे। उनकी तरफ मुड़कर देखा। लगा कुत्ता भी अपनी भाषा में कुछ कह रहा था। चमगादड़ों का एक समूह चीं-चीं करता हुआ मेरे ऊपर से गुजर गया। ऐसा महसूस हुआ जैसे वे भी कुछ कह गये। मैं बेचैन हो गया। फिर करवट बदल कर लेट गया। गर्मी और अधिक बढ़ गई। पर मैं लेटा ही रहा, तभी लेटे-लेटे बैरागी बाबा गाली देने लगे।

मुझे समझ में नहीं आया कि वे किसे गाली दे रहे थे। पर मैंने मुड़कर उनकी ओर नहीं देखा। न जाने क्यों डर लग रहा था। कहीं पागल तो नहीं है या कोई औघड़ है, क्योंकि बड़ा ही घिनौना उनका शरीर था। वे बड़ी उल्टी-सीधी गालियाँ बकते जा रहे थे। तभी महसूस हुआ कि वे मुझे ही गाली दे रहे हैं पर मैं चुपचाप सुनता रहा। वे बोलते जा रहे थे। "क्यों तूने अमरीका, फ्रांस, ब्रिटेन, जर्मनी और पूर्व पश्चिम का देश नहीं देखा है? कार मोटर तो शायद देखा ही नहीं है और न वायुयान से ही सफर किया है? मूर्ख ऐसा ही करना था तो लक्ष्मी का दान क्यों किया? इसी के सहारे के लिए इसे पाने के लिए मानव क्या-क्या नहीं करता है। लक्ष्मी पूर्णतया तुम्हारी थी। तुम पूरे ऐश्वर्ययुक्त थे। फिर अधूरा क्यों बने? अगर ऐसा ही है तो जाओ। उसी दुनिया में जाओ। जहाँ वैभव है, बंगला है, कार है और देश-विदेश का सैर-सपाटा। तुम्हें सब कुछ मिल जाएगा। केवल तुम खो जाओगे।" फिर वे चुप हो गये।

मैंने उनकी बातों को सुनकर भी अनसुना कर दिया जैसे मैंने कुछ सुना ही न हो। फिर वे भद्दी-भद्दी गालियाँ देने लगे। मुझे न बुरा लगा। न अच्छा। मैं मन-ही-मन सोच रहा था आखिर क्यों यह बाबा ऐसा कर रहा है? कह तो मेरे लिए ही रहा है पर क्यों? पर क्या फर्क पड़ता है? कोई इसके द्वारा दी गयी गाली मुझे छू रही हैं? बकने दो, मैंने मन-ही-मन निर्णय लिया। फिर सोचा आखिर इसको ये सब पता कहाँ से चला? मैं चुप ही रहा। अजीब सी बेचैनी छाई रही। तभी हवा की शीत लहर ने शरीर तो स्पर्श किया तो बाबा चिढ़कर हवा को गाली देने लगे। फिर मुट्ठी में कुछ बालू उठांकर बुदबुदाते रहे। फिर घुमाकर वह बालू फेंक दिया। न जाने उस बालू में कहाँ से चमक आ गई। हवा एक दम थम गई और जो महात्मा सो गए थे, मुर्दे के सदृश नजर आने लगे। एकदम सन्नाटा छा गया। कुत्ते तक सो गए। तभी मुझे कुछ सरसराहट सी महसस हुई। बालू के कणों के मध्य

एक सर्प फन फैलाए बैठ गया था। बाबा उसे गाली देकर पूछ रहा था, "क्यों आई? मैंने तुझे काम सौंपा था। तूने क्यों छोड़ा? शीतल हवा क्यों चली? अब आगे वढ़ अपना काम कर।" मैं एकटक उस सर्प को देख रहा था। वह नागिन थी। मेरे देखने से वह सिकुड़ गई। मैं उठकर बैठ गया। बावा हँसने लगे। फिर गाली देकर उसे भाग जाने के लिए कहा। बावा के हर शब्द में गाली थी। मैंने पुनः अपनी विचार-तरंगों को उस नागिन तक भेजा कि तुम कौन हो? अपने स्वरूप का निर्माण करो और अगर केवल सर्प हो तो सो जाओ। सर्प में अजीव सा परिवर्तन हुआ। "नहीं-नहीं ऐसा नहीं होगा"। बावा बौखलाहट में खड़े हो गये। वोलते रहे। "तुम अपनी विचार-तरंगों को रोको"। नागिन सूक्ष्मता को धारण कर नारी स्वरूप का निर्माण कर रही थी कि मैंने मन-ही-मन अपने संकल्प को वापिस ले लिया और फिर लेट गया। वावा ने अपने सीने के पास से नाखून द्वारा खून निकालकर छिड़का। नागिन उसे पीकर लुप्त हो गई। प्रकाश भी विलीन हो गया। टण्डी-टण्डी हवा चलने लगी, हम दोनों सो गए।

दूसरे दिन प्रातः ही चाय के वाद नागाओं ने वावा को छेड़ दिया। लोगों ने कहा, "सीताराम अव तो वारह वर्ष वैराग्य को पूरे हो गये होंगे? अतः आप हमारे शिष्य बन जाएँ। आप की सेवा से हम खुश हैं।" कुछ नागा लोग आपस में ही तर्क करने लगे कि कौन शिष्य वनाएगा। इसी वात पर वैष्णव संत ने छेड़ दिया कि पहले तुम लोग साधू बनो फिर मुझे शिष्य वनाना। उन्होंने राम का भाष्य पूछ लिया। सभी महात्मा चुप लगा गए। वावा ने अकाट्य यौगिक भाष्य किया राम का।

मैं भी सुनकर दंग रह गया। दोनों का सम्मिश्रण करके प्रवाह करने से बन्धन मुक्त हो जाना बताया। एक जीवन देता है। एक मृत्यु की ओर खींचता है। दोनों का मिलन मोक्षदायी है। वह राम है और कह कर अपने काम में लग गए। कोई भी साधू कुछ भी नहीं कह सका। सव उनसे प्रभावित थे और उनकी सेवा को देखकर अचम्भित थे। न इसमें अहंकार था, न राग था। वह निःस्वार्थ सेवारत थे। मैं पुनः शहर को चला गया। दिन भर कुछ-न-कुछ सोचता रहा, बाबा के बारे में। शाम को मैंने खाना नहीं खाया और चबूतरे पर जाकर लेट गया। कुछ देर तक वावाओं से विचार विमर्श होता रहा। अब तक यात्रा के लिए पैसा काभी आ चुका था। सभी कागजात तैयार थे। पर न जाने क्यों अब देर लग रही थी? मेरे कुछ मित्रों को मेरी उपस्थिति के बारे में पता लग गया था। दिन में कोई-न-कोई आ जाया करता था। मैं भी कुछ घबरा सा गया था। जब जाना ही है तो जल्दी चल देना चाहिए। ऐसा निश्चय कर बाबा लोग सोने चले गये। मैं भी लेट गया।

तभी बैरागी बाबा फिर आ गये। पुनः कुछ क्षणों के उपरान्त कल वाली वाणी शुरू कर दी। गालियाँ देने लगे। फिर कहने लगें, "पहले विकसित किये गये सभी प्रयासों पर क्यों पानी फेर रहे हो? सूरज अगर उदय होता है तो ढलता भी है। जल उतार-चढ़ाव दोनों को देखता है। देखो यार! पश्चिम की आबोहवा में परिपक्व होकर जाओ। नहीं तो कच्ची रोटी की तरह लोग तुम्हें फेंक देंगे। तुम पको या न पको पर ये महात्मा तुम्हें पकाकर जरूर बेच देंगे। आखिर तुम क्यों इन प्रपंची नागा महात्माओं के चंगुल में फँस गये हो? पगले तुम पागल बन जाओ। भूल जाओ कि तुम एक विवेकपूर्ण शिक्षित मानव हो। अच्छाई-बुराई, सुगन्ध-दुर्गन्ध, स्वच्छ और गन्दगी को एक समान समझो। डूब जाओ, समुद्र की गहराइयों में। गंगा की तरह सारी भौतिकता को अपने में समेट लो। भाग जा। इतनी दूर भाग जा जहाँ तुझमें योगी ही जिन्दा रह जाये। योगी संसार से मरकर संसार में जीता है। पहले अपने आप को मार दे और फिर जी कर देख। इस जीने में और उस जीने में क्या अंतर है? सांसारिक अनुभूतियों को, सांसारिक उपलब्धियों को क्यों जिंदा रखे हुए हैं? ये तुझे और जिन्दा रखना चाहते हैं। भौतिक जगत् के लोग तुम्हें जिन्दा रख कर करेंसी बटोरना चाहते हैं और तुम उसी में प्रयत्नशील हो। देखना कल तुम्हें पता चल जाएगा।" मैंने आज भी उनकी बातों का कोई जवाब नहीं दिया। वे कभी कुछ कहते, कभी-कभी गाली देते। गाली देना शायद उनका स्वभाव बन गया था।

सुबह-सुबह ही से परिचित लोग आ गये। सब ने उनके द्वारा बनाई गई चाय पी। फिर कुछ देर के बाद मेरा मजाक उड़ाने लगे। उसमें कुछ मेरे साथ वायुसेना में थे। कुछ भारतीय उच्चाधिकारी थे। मैं उनका मुँह ताकता रह गया। आज उनको क्या हो गया है? मैंने वैरागी बाबा की तरफ देखा तो वे मुस्कुरा रहे थे। प्रिया ओबेराय ने हमारे साथ अमेरिका चलने की तैयारी कर ली तो सुरेन्द्र ने मुझे बधाई दी।

नेपाली सुन्दरी सुषमा ने मुझे उलाहना दिया कि यह कोई अच्छी बात नहीं है। चलिए मैं भी आप के स्वागत के लिए आप से पूर्व अमेरिका पहुँचने की कोशिश कर रही हूँ। आज आप से पैसा माँगना पड़ रहा है। मेरे पास तो आप का दिया हुआ बहुत कुछ है। मैं चुप-चाप सभी की बातों को सुनता रहा। फिर उठकर गाड़ी में जाकर बैठ गया। गाड़ी दिल्ली की सड़कों पर दौड़ती रही। मैं कहीं न रुका। आज गाड़ी मैं स्वयं चला रहा था। मैंने गाड़ी यमुना के पुल के पास आकर रोकी। पुल पर जाकर मैं यमुना की धारा को देखने लगा जो बहती ही जा रही थी। कभी मुड़कर पीछे नहीं देखती और मैं पीछे भाग रहा हूँ। क्या इसीलिए मैं सभी बंधनों

को तोड़कर इतना दूर भागा हूँ? सभी रिश्ते-नाते से कितना दूर मैं इन महात्माओं के बंधन में क्यों आ गया? वैरागी बाबा क्या कहना चाहता है और मैं अपने अहंकार में कुछ सुनने को तैयार नहीं। अब ऐसा नहीं होगा? आसमान की ओर देखा, वह खुला था। वह नदी को मौन दिलासा दे रहा था। मुझे भी उसने वही संदेश दिया। सूक्ष्म से विराट्। मैं लपक कर गाड़ी में आ बैठा।

आज बीर गिरि बाबा बड़े प्रसन्न थे। उन्होंने मुझे बहुत से फल दिये। फिर दूध पिलाया। बैरागी बाबा ने दौड़कर गिलास और कटोरी उठा ली और राख से साफ करने लगे। फिर मुझे गिलास को दिखाते हुए बोले, "मैं इसी तरह मल-मल कर चमकाता हूँ। मैल कितनी देर तक प्रभावशाली रह सकती है। मैं भी यह देखना चाहता था। शाम को बैजनाथ सिंह आये जो अमेरिका में शादी करके वहीं रह गये हैं। वे वहाँ एक सुप्रसिद्ध डाक्टर हैं। आसाम के तिनसुकिया में हम दोनों काफी अरसे तक रह रहे थे। उन्होंने अमेरिका आने के लिए स्वागत किया और मेरे लिए आसाम में प्रेस और चाय बागान को लेने का निर्णय दिया। प्रेस तो मैंने पाली सिन्हा को दे दिया था। चाय बागान के बारे में बाद में निर्णय लेने को कहा। वे सभी चले गये।

शाम को आज भी मैंने भोजन नहीं किया और अपने पूर्व निश्चित जगह पर जाकर लेट गया। आज मैं किसी से बात नहीं करना चाहता था। मेरे मौन को बैरागी बाबा ने आकर भंग किया। वे मेरे पास ही बैठ गए और बोले, "अब क्या विचार है? ऊँचाई पर चढ़ना है या तलहटियों की खाक छाननी है? तरंगें तो हर जगह प्रवाहित हो रही हैं और उद्‌गम भी सभी जगहों से है, पर वृत्तियाँ अलग-अलग हैं। हर आदमी अपने-अपने विचार-प्रवाहों को छोड़ रहा है। अन्य जीव भी भेज रहे हैं पर जो प्रवाह हिमालय की गुफाओं से नहीं निकल रहा है वह हम लोगों के लिए उपयोगी नहीं है।"

मैं भी उठकर बैठ गया। आज न वे गाली दे रहे थे न वैसा आभास हुआ। मैंने उनके चेहरे को गौर से देखा—चेहरे पर छुटपुट दाग नजर आया। उन दागों से कोई प्रतिविम्ब निकल रहा हो, ऐसा लग रहा था। शरीर पर कटे का कहीं दाग नहीं था। एकं युवा शरीर था। चेहरे पर रौनक छिटक रही थी। वह कुछ कहना चाह रहे थे। पर बीचं में मैंने ही बोल दिया, "बाबा मुझे अभी तक समझ नहीं आया कि आप कौन हैं और आप कहना क्या चाहते हैं? आपकी बातों से पता लग रहा है कि आप मेरे निर्णय से परिचित हैं। पर मैं क्या करूँ, मुझे समझ में नहीं आता? मैं इस मुसीबत से कैसे छुटकारा पाऊँ? सब कुछ तैयार है। अब केवल वापसी का टिकट लेना है। मैं क्या करूँ? आप मार्गदर्शन करें। मैं तो यह चाहता हूँ कि किसी भी श्रेष्ठ महापुरुष के सानिध्य में रह कर हिमालय की गुफाओं में

तपस्यारत रहूँ। पर न जाने क्यों ऐसा नहीं हो रहा है। क्यों अवतार बाबा ने इन महात्माओं से मेरा परिचय कराया? जो कभी मेरे समक्ष बोलने की हिम्मत नहीं रखते थे, वे ही मेरा आज मजाक उड़ा रहे हैं। मैं किन-किन परिस्थितियों से गुजरता हुआ, कहाँ पहुँचूँगा? मैं इसकी जानकारी प्राप्त करना चाहता हूँ। मैं कौन हूँ, कहाँ था और कब? अब अगर इस जन्म को पाया हूँ तो क्यों? मुझे अभी कुछ पता नहीं और न उन महापुरुषों ने मुझे जानकारी दी। यह सब मुझे ही खोजना होगा। मैं सब कुछ प्राप्त करना चाहता हूँ। पर अभी तक वक्त ने मुझे ठहराव ही नहीं दिया और न ही महापुरुषों ने रुकने दिया, इसके पीछे कोई रहस्य छिपा है। इस रहस्य को आप ही लोग जानते हैं। मुझे उस रहस्य के दरवाजों को खोलना है। यह तभी संभव है, जब मैं दूर दराज हिमालय के वनों या कन्दराओं में अपने भौतिक शरीर को रख कर वर्षों तक अन्तरिक्ष और सूक्ष्म जगत् के दरवाजों को खोलूँ। क्या इसमें आप मेरी सहायता कर सकते हैं?''

''देखो पायलट, क्या कहना है या क्या मैं तुम्हें दे सकता हूँ अथवा क्या मुझे तुमसे लेना है? यह तो वक्त पर छोड़ दो। अभी वर्तमान को लो। कल तो कल आयेगा और कल ही रास्ता देगा। कल्पना तो दुनिया वालों को करने दो, हम तो चल पड़े हैं। हमारा लक्ष्य निर्धारित है। मार्ग नहीं, अनेकों पगडण्डियाँ हैं। पर सब एक ही चौराहे पर जाकर मिल जाती हैं। हमें तो केवल चलना है। न चिन्तन है, न मनन। कहीं पीछे मुड़कर झाँकें इसलिए संस्कार की दीवारों को तोड़ देना है। कर्मरूपी ईट को इकट्ठा नहीं करना। बोलो! चलोगे? अगर चलना है, तो चल दो। हमारा लक्ष्य स्वयं अपनी ओर खींच लेगा।''

''कल प्रातः मैं चल दूँगा। शान्ति वन के चौराहे पर मैं प्रतीक्षा करूँगा। इन सभी सामानों को छोड़ देना। कुछ आवश्यकता भर पैसे पास में रख लेना और आ जाना। रास्ता हमारी प्रतीक्षा में है। समय हमारा इन्तजार कर रहा है।'' इसके बाद हम दोनों सो गये।

सुबह बाबा सभी को चाय पिला कर चल दिए। थोड़ी देर के बाद सभी कागजात और रुपयों को मैंने रामावतार गिरि जी को सौंप दिया। थोड़े से रुपये हमने धोती के किनारे पर बाँध लिये और केवल एक धोती पहन कर चल दिए। ड्राइवर गाड़ी लेकर आ गया था। मैंने उसे मना कर दिया और टहलते हुए चल दिया। लोगों ने सोचा मैं टहल रहा हूँ।

धीरे-धीरे मैं शान्तिवन के चौराहे पर पहुँचा। चलते वक्त मैंने बीरगिरि बाबा की ओर देखा, वे मुस्कुरा रहे थे। धीरे से हाथ उठाकर उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया

था और इधर पुलिया पर बैरागी बाबा बैठे मेरा इंतजार कर रहे थे। लपक कर उन्होंने मुझे थाम लिया और हम दोनों स्टेशन की तरफ चल दिये। रास्ते में उन्होंने बताया कि सहारनपुर की गाड़ी जाने वाली है। चलकर दो टिकट ले आना सहारनपुर तक के लिए। मुझे जाते ही टिकट मिल गया। रेल से सहारनपुर आ गये। बाजार में उन्होंने एक कमण्डल और एक चद्दर ली। हमारे पास तीन रुपये बच गये। तीन रुपये का टिकट कटा कर हम दोनों बस द्वारा चोरपुर हरपटपुर पहुँचे। थोड़ी दूरी पर बाँध था। पैदल चल दिये। वर्षा पड़ने लगी थी, रिम-झिम रिम-झिम। रात भी होने लगी थी। हम यमुना किनारे पहुँच गये। लकड़ियों का टाल था। यमुना में बाढ़ आयी थी। दूर-दूर तक पानी-ही-पानी नजर आ रहा था। हमने लकड़ियों की ओट में रात बिताने का इंतजाम किया। चारों तरफ अँधेरा ही अँधेरा था। कहीं भी रोशनी नजर नहीं आ रही थी। मुझे टाल की ओट में बैठाकर बाबा चले गये। मैं कुछ देर तक बैठा रहा फिर नींद आ गई। बाबा ने आकर मुझे जगा दिया। वे तुम्बिया में खीर भर कर लाये थे और दोने में पकौड़ी। सब सामान कहाँ से ले आये, मैं नहीं कह सकता, पर आस-पास में कोई गाँव नहीं था क्योंकि हम लोग करीब तीन मील पैदल चलकर आये थे। बरसात में ही ठहरने के लिए जगह खोजते, कोई गाँव नहीं होने से टाल पर ठहर गये। भोजन के बाद हम सो गये। वर्षा हो रही थी। किसी तरह से रात बिता कर सुबह नदी को पार कर पौहटा साहब पहुँचे। गुरुद्वारा का दर्शन कर नाहन की तरफ चल दिये। बाबा ने कुछ खाने को नहीं दिया। उस दिन वे बोले कि हमारे लिए खीर बनाकर महात्मा आगे प्रतीक्षा कर रहा है। उसके दोनों हाथ नहीं हैं और न एक आँख है, तो भी वह अपने सभी कार्य स्वयं करता है। जंगल में पीपल के पेड़ के नीचे एक कुटिया बनी थी। वहीं पर वह महात्मा रहता था। हमारे स्वागत के लिए पहले से ही आए दो भक्तों के साथ खड़े थे। दोनों हाथ कोहनी के नीचे से नहीं थे। बाई आँख भी नहीं थी। हमारे पहुँचते ही उन्होंने खीर परोस दी। वे चम्मच को दोनों कोहनी से दबाकर खीर खाने लगे।

तीन दिन तक उस आत्म परीक्षित लूले बाबा के साथ गुजारे। उन्होंने सिरमौर की गाथाएँ सुनाई, जो ऐतिहासिक दन्तकथा के सदृश थीं। हमें सचेत किया कि तन्त्र विद्या का बड़ा प्रभाव है। प्रायः युवा नारी मोहिनी विद्या को जानती है। यह नट-नटिनियों का क्रीड़ास्थल रहा है। जिस कारण से सिरमौर का गारद हो गया। सिरमौर की मोहिनी नारी की पहचान बताकर लूले बाबा ने आगे का रास्ता बताया। हम आगे नाहन की तरफ चल दिए। नाहन में हम नहीं रुके। बाबा वहाँ रह चुके

थे। मेरा भी राज-परिवार के लोगों से परिचय था। हम नाहन बाजार से होकर गाँव की तरफ चल दिए। शाम को किसी मन्दिर में विश्राम करने का निश्चय किया। इधर साधुओं को लोग अच्छा नहीं मानते। इनके मन में साधुओं के लिए कूट-कूट कर घृणा भरी है।

हमें कुछ समझ में नहीं आ रहा था। रास्ते में ही एक सभापति से भेंट हो गई। उससे बातें होने लगीं तो उसने बताया कि यहाँ साधु वहुत आते थे। लोग खूब सेवा करते थे। लेकिन उन साधुओं ने हमें धोखा दिया। यहाँ पर नारी अपने विचारों से स्वतंत्र है। वह कभी दूसरे पुरुष के पास जा सकती है और दस पाँच दिन ठहर कर फिर अपने पति के पास आ सकती है। उसका पति उसे कुछ भी नहीं कह सकता। पर यह सब वह अपनी शादी के बाद ही कर सकती है। और उसके पसन्द की बात है। दूसरी तरफ हमारे यहाँ ताले नहीं लगाये जाते और न दरवाजे बंद किए जाते हैं। जटा-जूट बढ़ाये ये महात्मा यहाँ आये। वे अपनी जटाओं से कभी गंगाजल निकाल कर दिखाते, तो कभी खून। प्रायः पुरुष खेतों में काम करता है। ये महात्मा हमारी बहू-बेटियों को भगा ले गये और गहनों के साथ-साथ थाली-लोटा भी लेते गये। यहाँ प्रायः हर गाँव में पाँच-दस ऐसे केस हो गये। अव हम कैसे विश्वास करें कि कौन साधु है? इसलिए हम लोग साधुओं को गाँव में आने ही नहीं देते। बातें करते-करते हम मन्दिर में पहुँच गये। हम मन्दिर पर रुक जाना चाहते थे। वहाँ पर भाइयों का डेरा था। पुजारी का परिवार रह रहा था और मन्दिर के बरामदों में गेहूँ और जौ का ढेर पड़ा था। हम निराश हो गये। तभी सभापति ने कहा—आओ बाबा हमारे साथ। सभी बाबा लोग एक समान नहीं होते। वह तो हम लोगों को पता है कि वे सब भाटड़े थे। शिमला तरफ के शरणार्थी पंजाबी थे। वे अपने बालों को खोलकर माला आदि पहनकर भेष बनाकर आते थे और बहू-बेटियों को लोभ देकर भगा ले जाते थे। आप लोग महात्मा हैं, मुझे रास्ते में पता लग गया था। हम लो!ग रात सभापति के घर पर रहे। सुवह चल दिये। गौरी गंगा के किनारे दूसरे दिन कुछ औरतों ने हमारा रास्ता रोका। पर हम रुके नहीं, चलते ही रहे तो वे हमारे पीछे चलने लग गई। बैरागी संत ने मुझे सावधान किया कि इनके हाथों से कुछ मत खाना। एक पहाड़ी टीले की चढ़ाई समाप्त करने पर एक हाई स्कूल मिल गया। वहाँ पर कुछ दुकानें थीं। लड़के-लड़कियों ने मुझे बहुत छेड़ा। कुछ अध्यापक वर्ग भी उसमें भाग ले रहा था। तब मैंने अंग्रेजी बोलनी शुरू की तो अध्यापकों ने बच्चों को रोका। हमें स्कूल में ले गये। काफी आदर किया उन लोगों ने। औरतें वहाँ भी पहुँच गई और हमें रोकने का प्रयास

करने लगीं। वे सब हमें अपने गाँव ले जाना चाहती थीं। पर हम नहीं रुके। एक युवा कन्या ने मुझे फल देना चाहा, मैंने नहीं लिया। हम स्कूल से निकल कर तेजी से नदी कीं ओर चल दिए। करीब मीलों दूर जाने के बाद हमने मुड़कर देखा, वे औरतें नहीं आ रही थीं। तब बाबा ने कहा, उसमें वह डाकिनी थी, जो तुझे फल देना चाहती थी। हमने उस दिन नदी किनारे एक बाबा की कुटिया में रात बिताई।

रेणुका ताल गए। फिर चुड़धार पहुँचे। वहाँ पर बहुत से वामाचारी और तांत्रिक महात्मा रह रहे थे। चारों तरफ खून के छींटे पड़े थे और सभी महात्माओं की कुटिया में मांस और शराब थी। हम वहाँ नहीं रुके। शाम हो रही थी। हम नीचे घाटी में उतर गये। रास्ते में आनन्दमार्गी साधुओं से भेंट हुई। हम वहाँ भी नहीं रुके। नदी के किनारे-किनारे चलते रहे। थोड़ी ही दूरी पर एक मन्दिर नजर आ गया,, हम उधर ही बढ़ चले। कुछ दुकानें थीं रास्ते के किनारे। वहाँ एक ब्रह्मचारी पीत वस्त्र पहने बैठा था। हमें उन्होंने रोक लिया। कुछ बातें हुई। वे संस्कृत के अच्छे जानकार नजर आए। प्रायः श्लोक का प्रयोग कर रहे थे। उन्होंने मुझसे पूछ लिया कि आपने पतंजलि योग पढ़ा है? मैंने कहा —"नहीं"। तो वे कहने लगे, "आप क्यों साधु बन गये"? मैं उनका मुख ताकने लगा और लोग हँसने लगे। अजीब सा व्यवहार किया था ब्रह्मचारी ने। हमें नीचा दिखाकर अपनी मर्यादा बढ़ाना चाहता था। तभी मैंने अंग्रेजी बोलना शुरू किया तो सभी लोग शांत हो गये। फिर मैंने ब्रह्मचारी से पूछा कि आप बिना अंग्रेजी पढ़े साधु कैसे बन गये? उनका चेहरा देखने योग्य बन गया था और ग्रामीण लोग खूब हँस रहे थे। तब मैंने ब्रह्मचारी जी से कहा—महाराज! भाषा और पुस्तकों के ज्ञान से महात्मा नहीं बना जाता। यह तो एक दूसरे को पहचानने और व्यवहार के लिए बनाया गया है। आपने दीक्षा नहीं ली है। आपमें अहंकार भरा है। इन ग्रामीणों के बीच श्लोक सुनाकर आप अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। पर भूल कर भी आप किसी महात्मा का अपमान न करें। आपने हमसे तो सब कुछ आने-जाने को पूछा—पर आपने हमें रोकने का प्रयास क्यों किया? जबकि आप इस मन्दिर के पुजारी हैं, तो भविष्य में क्या आपसे यह उम्मीद की जा सकती है कि आप अतिथियों की सेवा करेंगे। अच्छा हम चलें—हमारी गलतियों के लिए क्षमा करें। रात हो रही है। हमें कहीं ठिकाना खोजना है। जहाँ रात गुजार सकें।

हम उठकर चलने लगे तभी ब्लाकप्रमुख ने आगे बढ़कर हमें रोक लिया। आप लोग आज हमारे यहाँ विश्राम करें और ब्रह्मचारी जी भी पूजा के बाद यहीं आयेंगे। सभी लोगों की यही राय थी। नदी किनारे ही उनका मकान था। हम

वहीं गये। मैंने ब्रह्मचारी जी से पतञ्जलि योग ले आने का कहा तो पुनः सभी लोग हँस दिये। बड़ी अच्छी जगह थी। नदी का कल-कल और देवदार के वृक्ष लुभावने लग रहे थे। प्रमुख भावुक था, उसने हमारी खूब सेवा की। तीन दिन तक हमने वहाँ विश्राम किया। पातञ्जलि योग और योगवाशिष्ठ का हमने प्रथम बार अध्ययन किया। पतञ्जलि के सभी सूत्रों को मैं रट गया और दूसरे दिन हर बातों पर सूत्रों का प्रयोग करने लगा।

वहाँ से हम जुब्बल होते हुए किन्नौर पहुँचे। किन्नर कैलास गये। वहाँ से लौट कर तातो पानी, मनाली, रामपुर, बुसहर, मण्डी होते हुए शिमला गये। रास्ते में पागल बाबा मिले, साथ में रामकृष्ण जी भी थे। हम शिमला से कुल्लू गये। रास्ते में खड़ेसरी बाबा और रामनाथ अघोरी से भेंट हुई। फिर हम राहतांग-पास गये। ग्लेशियर पर तीन दिन ठहर गये। फिर लौटकर शिमला आ गये। पैदल ही चंडीगढ़ की तरफ चल दिये।

सोलन से पहले एक बगीचा है। शिमला—सोलन के रास्ते में। वहाँ मन्दिर बना है। उसी के ठीक सामने पहाड़ी की ओर एक बहुत बड़ी गुफा है, जिसके बारे में पाण्डवों के वनवास की दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। वहाँ से चुड़धार का भी रास्ता जाता है। हम रात गुजारने के उद्देश्य से गुफा की ओर चल दिये। वहाँ पर बहुत बड़ा अखरोट का पेड़ था। उस पेड़ पर एक औघड़ बैठा हमारी प्रतीक्षा कर रहा था—वह काला चोंगा पहने था और हड्डी की बाँसुरी बजा रहा था— इसके बारे में वैष्णव संत ने मुझे शिमला में ही बता दिया था कि आज एक औघड़ से भेंट होने वाली है। पेड़ के नीचे कुटिया थी। बगल में गुफा थी। गुफा में बहुत सी खोपड़ियाँ थी,/ जो पत्थरों पर सजा कर रखी हुई थीं। कुटिया में तीन लोहे के बड़े-बड़े बक्से रखे हुए थे। हमें देखते ही वह बोल पड़ा, "आओ बरखुर्दार ! मैं तो कब से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" वह पेड़ से कूद गया और अपनी कुटिया के किनारे एक पत्थर की चट्टान पर बैठ गया। वह फिर बोला—"आप लोगों की क्या सेवा की जाए। यहाँ तो कुछ भी नहीं है। भोजन की व्यवस्था तो बैरागी बाबा ही करेंगे। आज मैं भी आपके हाथों का बनाया हुआ भोजन पाऊँगा। क्यों ठीक है न बाबा? आप तो मेरे हाथों का बना हुआ भोजन नहीं करेंगे।" मैं भी एक पत्थर की शिला पर जाकर बैठ गया। बैरागी बाबा नहीं बैठे। वे धीरे-धीरे पेड़ के पास जाकर कुछ देखने लगे। फिर मुड़कर औघड़ बाबा के पास आ गये। दोनों में कुछ बातें होने लगीं। बहुत देर तक तेरा-मेरा होता रहा, जैसे आपस में झगड़ रहे हों। फिर बैरागी कुटिया में घुस गये और बक्से खोल-खोलकर देखने लगे। वे

सब खाली थे। न वहाँ कोई बर्तन था और न भोजन बनाने का सामान। बैरागी बाबा को खाली हाथ लौटते देखकर औघड़ हो-हो करके हँसने लगा। दोनों झगड़ गये। एक दूसरे को मरने-मारने पर उतारू हो गये, रात हो गई पर कोई शांत नहीं हो रहा था। आपस में गालियाँ भी बक रहे थे। काफी देर तक ऐसा ही चलता रहा। चारों ओर अँधेरा था। केवल धूनी जल रही थी। जिसका हल्का प्रकाश रोशनी का काम दे रहा था। मैं तब तक उनके झगड़े को सुनता रहा। न भोजन की व्यवस्था हुई थी न विश्राम के लिए ही, औघड़ ने पूछा।

अचानक मैंने उठकर औघड़ बाबा को पकड़ लिया और उठाकर पटक दिया तथा एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर उसे मारने को तैयार हो गया। तब औघड़ मेरे पैर पकड़ कर गिड़गिड़ाने लगा। मैंने पत्थर दूर फेंक दिया। उसे उठा लिया और बोला, "बाबा हम लोग आपकी सिद्धि और चमत्कार देखने नहीं आये हैं। इतनी रात ढल गई और आपने किसी बात के लिए नहीं पूछा, उल्टे मजाक उड़ा रहे हैं। तब से अब तक झगड़ते चले जा रहे हैं। हम तो दूर से पैदल चलते आ रहे हैं। हमें भोजन चाहिए, फिर विश्राम। क्योंकि हमें सुबह पुनः चलना है। पर आप का व्यवहार मुझे अच्छा नहीं लग रहा है। आपके पास साधन नहीं हैं, तो हम ऐसे ही सो जायेंगे पर आप व्यवहारकुशल तो होते।"

औघड़ घबड़ा गया था। वह हाथ जोड़कर बोलने लगा, "पायलट बाबा मैं रामू अघोरी हूँ। रामू पीर भी मुझे कहते हैं। मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था। मैं आपको यहीं रोकना चाहता हूँ। इसलिए बैरागी बाबा से मैं झगड़ रहा था। आपसे मुझे बहुत कुछ सीखना है, मेरा और आपका संस्कार कहीं-न-कहीं जाकर जुड़ता है। मुझे सूर्या ने बताया था, जब मैं मुस्तांग की घाटियों में गया था। आपके मिल जाने से श्रेष्ठ महापुरुषों का सानिध्य मुझे भी मिल जाएगा। इस बाबा ने निरुद्देश्य आप का साथ नहीं लिया है। आपके संस्कारयुक्त पूर्व अनुभूतियों को यह पाना चाहता है। तभी यह आपको दिल्ली से भगाकर साथ में भ्रमण कर रहा है। इसे बहुत कुछ पता है—पर आपसे कुछ नहीं कह रहा है। समय सब कुछ बता देता है—ऐसा सोच कर यह चल रहा है। पर मैं समय को अपने करीब खींच लेना चाहता हूँ—पर मेरा दुर्भाग्य या भाग्य कहिए—जो आपके द्वारा मार खाते-खाते बचा—आप नाराज न हों। जीवन में कुछ न चाहकर भी आदमी को करना पड़ता है। वही मैंने किया है। उन बक्सों में सभी कुछ है। पर बाबा को कुछ भी नहीं मिला। मैंने गायब कर दिया है। मैं भी अभी तक भूतप्रेतों के चक्कर में पड़कर औघड़ बन गया हूँ और वैष्णव बाबा भी नागिन्न को इष्ट बनाकर अभी तक भटक

रहे हैं। आत्मा की पराकाष्ठा की खोज इन्हें भी है और मैं भी खोज रहा हूँ, आत्मीय विकास से युक्त पथिक को।''

आइये, हम लोग भोजन करें। मैं व्यवस्था करता हूँ। हम गुफा में प्रवेश कर गये। प्रकाश की व्यवस्था की। फिर उन्हीं बक्सों से काजू और किसमिस निकाला—जो पहले खाली थे। हमें दोनों चीजें सौंप कर औघड़ बाबा बैठ गये। फिर हाथ फैलाकर उन्होंने कुछ माँगा तो किसी अदृश्य शक्ति ने ताजी पूरी और हलवा उसके हाथ पर रख दिया। मैं आश्चर्य से देख रहा था, तो औघड़ बाबा ने कहा, ''बाबा यह लौकिक है, पारलौकिक नहीं। मैं स्वतः अपने आप इससे उलझ गया हूँ। किनारा बहुत दूर रह गया है। आप तो परमतत्त्वदर्शी हो। आप मुझे ऐसा देखकर अचम्भा मत कीजिए। लीजिए, भोजन कीजिए। बैरागी बाबा तो इसे नहीं पायेंगे। इसलिए मुझे क्षमा करें। मैं और कोई व्यवस्था नहीं कर सकता। हर आदमी में स्वार्थ छिपा है, मैंने अपने स्वार्थ को श्रेय देकर आपका निरादर किया, इसके लिए आप मुझे क्षमा कर दें। फिर वह हाथ फैलाकर कुछ माँग रहा था। तभी मैंने अपनी संकल्प शक्ति को प्रवाहित कर दिया। वह हाथ फैलाये ऊपर देखता रहा। बहुत देर तक। फिर मेरी तरफ देखकर बोला कि देखा आपने। मेरे जीवन की सम्पूर्ण साधना यहाँ बेकार है। वह लेकर आ गया है, पर वह मुझ तक नहीं दे सकता क्योंकि बीच में आपने अपनी विचार-तरंगों को भेज रखा है। मैं भी यही देखना चाहता था।'' मैंने अपना संकल्प तोड़ा तो खिचड़ी का सब साधन लिफाफों में दे दिया। बैरागी बाबा ने उसे ले लिया। फिर बनाने चल दिये। झोली से औघड़ ने कुछ रुपये निकाल कर रख दिये। वे गायब हो गये। थोड़ी देर के बाद कुछ खुले रुपये और पैसे वहाँ पड़े थे। कुछ समय पश्चात् बैरागी बाबा ने खिचड़ी बनाकर हमें आवाज दी। हम दोनों झोपड़ी में पहुँचे। तो एक ही थाली में उन्होंने पूरी खिचड़ी डाल दी। फिर उन्होंने कहा, ''आओ बाबा हम तीनों सारे भेद को मिटाकर एक साथ भोजन करें। ये संन्यासी, तुम औघड़ और मैं बैरागी। और साथ-ही-साथ यह संकल्प करें कि समाज के सभी राग-द्वेष की भावनाओं को हम पी जायेंगे तथा शान्ति प्रेम बाँटेंगे जिससे मनुष्य मनुष्य को पहचान सके।''

''यह कोई जरूरी नहीं कि हमें कोई जाने पर यह हमारा प्रयास रहेगा कि विश्व सत्य को पहचाने। हम विचारों की तरंगों को कहीं से बैठ कर भेजते रहेंगे, व्यक्तित्व की पूजा कोई सत्य नहीं है। सत्य तो सत्य है। जो अमिट, अटूट है। लौकिक पारलौकिक दोनों में है। हम साधना करेंगे, कल्याणकारी भावनाओं को लेकर। मान अपमान को मिटाकर।'' हम तीनों ने एक ही साथ भोजन किया।

वातावरण में रोमांचकारी परिवर्तन हुआ। सभी खोपड़ियाँ आपस में टकरा कर चकनाचूर हो गयीं। मधुर सुगंध वायुमण्डल में बिखर गई। हम तीनों सो गये। सुबह हम दोनों औघड़ से विदा लेकर चल दिये।

हम मन-ही-मन प्रसन्न थे कि रामू पीर अब कल्याण के लिए कुछ भी कर सकता है। हम सोलन-कालका होकर पिंजौर गार्डन आ गये। वहाँ नागा बाबा के साथ ठहरे। फिर चंडीगढ़, अम्बाला, सहारनपुर होकर शाकुम्बरी देवी पहुँचे। बीहड़ जंगलों के मध्य यह एक अति रमणीय देवी का शक्तिपीठ है। मन्दिर से हट कर ऊपर जंगल में त्यागी बाबा बैठे थे। उन्हीं के साथ हम दोनों ने रात गुजारी। आज पुनः वैष्णव बाबा और मैंने एक साथ खिचड़ी खाई और एक ही आसन पर सो गये। कुछ ही देर के बाद दो नागिन फन फैला कर फुफकार रही थीं। मैं उठकर बैठ गया। उसमें से मैंने एक को पहचान लिया। यह वही नागिन थी, जो दिल्ली में मैंने देखी थी। वह वैष्णव के पास आना चाह रही थी। पर नहीं आ पा रही थी। तब बाबा को अपनी गलती का एहसास हुआ कि वे मेरे आसन पर लेट गये थे। वह उठकर किनारे जा बैठे और दोनों नागिनें उनके करीब आ गई। त्यागी बाबा साँप-साँप चिल्ला रहे थे। त्रिशूल लेकर उन्हें मारने दौड़े, पर उन्हें रोक दिया गया। वे सम्मोहन की स्थित में वहीं बैठ गये। बैरागी बाबा ने अपनी छाती पर नख से काट कर खून निकाला और खून नागिन को दिया। खून पीकर नागिनें मस्त हो गई और नाचने की मुद्रा बनाकर खड़ी होने लगीं। धीरे-धीरे उन्होंने पूर्ण नारी का रूप ले लिया और नृत्य करने लगीं। फिर दोनों बाबा के पास बैठ कर बातें करने लगीं। तब वैष्णव ने बताया, "इसे आप पहचान चुके हैं। यही मेरी इष्ट है और यह मेरी साधना है। प्रतिदिन इनका मुझे सान्निध्य और साथ मिल जाता है। इसके साथ मेरे सम्पूर्ण जीवन का इतिहास जुड़ा है। इसी के द्वारा मुझे हर चीज की जानकारी प्राप्त हो जाती है। मैं राममय हो चुका हूँ, पर उपलब्धि का श्रेय इसी को है। मैं छोड़ दूँ तो ये दोनों भटक जाएँगी और अपनाये रहता हूँ तो मुझे मेरा रास्ता अवरुद्ध नजर आता है। काल में इतिहास छिपा है और काल ही में जीवन—दोनों को दृष्टिपात करके अभी तक चल रहा हूँ। पर अब संकल्प ऐसा करने देगा। अगर आप पीछे नजर डालें और अपनी विचारधाराओं को वहाँ तक भेजें तो आपको मेरा अतीत नजर आ जाएगा। लगता है, सदियाँ गुजर गयीं। अब तो केवल स्मृतियाँ ही शेष होंगी।

"पीलीभीत की पगडंडियों पर सड़कों पर हमारा इतिहास अंकित है। मैं पीलीभीत का रहने वाला हूँ, एक जमींदार का मैं बालक था, ठाकुर साहब का। कार मोटर के सिवाय चार घोड़ों वाले ताँगे की ज्यादा इज़्ज़त थी। मैं पीलीभीत स्कूल में

पढ़ रहा था। ताँगा मुझे रोज छोड़ जाता था, और ले जाता था। उसी स्कूल में यह भी पढ़ती थी। यह एक इंजीनियर तिवारी जी की लड़की थी। वे वहाँ के बड़े इज़्ज़त वाले इंजीनियर थे। हम दोनों इतना करीब आ गये थे कि कोई हमें अलग नहीं कर सकता था। तभी एक दिन माया तिवारी नहीं आई। मैं लौट कर नहर के रास्ते उसके घर जा पहुँचा। पर वहाँ कोई नहीं था। मकान खाली पड़ा था। तिवारी जी अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति को बेंचकर और नौकरी छोड़कर कहीं चले गये थे, जिसके बारे में किसी को पता नहीं था। मैं वहाँ के जमींदार का बेटा था। मेरा कोई क्या बिगाड़ लेता, इसी भय से वे स्वयं अपनी बेटी को लेकर गायब हो गये। लड़के-लड़कियाँ मेरा मजाक उड़ाने लगे। मैंने भी एक दिन संकल्प लेकर चल दिया। जब तक मैं माया को खोज नहीं लूँगा, तब तक चैन से नहीं बैठूँगा और मैं भारत भूमि का कोना-कोना छानता रहा। मेरे कपड़े फट गये। मेरे चेहरे पर दाढ़ी-मूँछ निकल आई। मेरा लड़कपन मुझमें ही खो गया। अब मैं प्रौढ़ था। पूर्ण विकसित मानव। बारह वर्ष के बाद वह जाकर मुझे मिली, देहरादून में। अब वह पूर्ण नारी थी। पर सुहागिन नहीं बनी थी। उसने मुझे वस्त्र मँगा कर दिये, जूते खरीदे और पैसे देकर मुझे ठहरा दिया। महीनों हम एक दूसरे के समीप रहे। तिवारी जी ने मुझे और माया को देख लिया था। माया जब घर पहुँची तो तिवारी जी उसे लेकर उसी वक्त चल दिये। वह मुझसे कुछ कह भी न सकी। मैं कई दिन तक प्रतीक्षा करता रहा। फिर उसके डेरे पर जाकर पता लगाया। वहाँ भी लोगों का पता नहीं था। मैं फिर चल पड़ा और चलता ही रहा, इस उम्मीद में कि माया मुझे फिर मिलेगी।''

''माया मुझे मिल गई। पर अब वह माया नहीं थी। मैं माया को खोज रहा था और माया कब की मर चुकी थी। माया को मार दिया गया था। देहरादून से तिवारी सपरिवार नेपाल आ गये और चीनी मिल में पार्टनर बन गये तथा अपनी सुकुमार कन्या को मार डाला। अब माया के चलते वह भटकना नहीं चाहते थे। मुझे बीस वर्षों के बाद यह पता चला। मैं खोजते-खोजते वैराग्य की स्थिति में आ गया। अयोध्या के प्रमोद वन की बड़ी कुटिया में मुझे गुरु का साक्षात्कार हो गया। वहीं पर मैंने दीक्षा ली। वहीं पर मुझे माया के के देहावसान की खबर मिली और मैं चल पड़ा। अब मैं माया को नहीं माया के मायावी स्वरूप के निर्माणकर्ता राम में लीन था। मैं गोमुख से ऊपर तपोवन में जाकर बैठ गया।

बैरागी बाबा ने आगे बताया, ''लगातार बारह वर्षों तक मैंने वहीं गुजार दिये। फिर लौट कर तपोवन महाराज के साथ भ्रमण में निकल गया। पुनः पैदल चलने का व्रत ले लिया। तपोवन महाराज हिमालय लौट गये। मैं पैदल चलता

हुआ नेपाल की तराइयों में आया। एक दिन जब मैं गोरखनाथ मन्दिर के चबूतरे पर लेटा था तभी माया ने आकर मुझे जकड़ लिया। मैं राम-राम ही करता रहा पर राम कुछ नहीं दे पाये। माया थी पर माया वह माया नहीं थी और न मैं वह था जिसे माया खोज रही थी। माया सर्प के रूप में गोरखनाथ में ही रह रही थी। सुबह होते ही माया सर्प बन कर छिप गई। मैंने वहाँ से चल दिया। मानसरोवर कैलाश जा रहा था। रास्ते में हेड़ियाखान, सोमबारी और लटूरिया बाबा मिल गये। वे भी कैलाश जा रहे थे। हम चारों एक साथ जा रहे थे। ज्यों ही रात्रि को मैंने सोना चाहा तभी माया आ गई और सर्प बनकर मेरे साथ सो गई। सोमबारी बाबा ने सर्प को देखा ते वे एक पत्थर का टुकड़ा उठाकर सर्प को मारने दौड़े तभी माया स्त्री का भेष धारण कर चिल्लाने लगी। सभी हतप्रभ हो गए। उन लोगों ने मेरा बहिष्कार कर दिया। अब मैं कैलाश नहीं जा सकता था। सोमबारी बाबा ने रोक दिया। तब मैं अपने शरीर को नोचने लगा। मेरे शरीर से खून निकल गया और नागिन उस खून को पीकर मस्त होने लगी। मैं मुजफ्फरनगर नाग देवता के पास आया। वहाँ पर यह दूसरी नागिन ने भी मेरे खून का स्वाद लिया और मैं दोनों का सहयोगी बन गया।''

''जब तुम मुझे मिले थे, तब मेरा तेरहवाँ साल गुजर रहा था, पैदल चलते चलते। मैंने तुम्हें देखकर एक निर्णय लिया—इनके बन्धनों से मुक्त होने का और पूर्णरूपेण तपोवन में जाकर राममय होने का। यह जो छड़ी देख रहे हो मेरे हाथ में, यह तब से मेरे साथ है, जब मैंने घर छोड़ा था। इस छड़ी में अद्भुत शक्ति है—मेरे क्रोध का निवारण यही करती है। मैं इसे फेंक दूँ तो आग लगा देगी। ये दोनों नागिनें इस छड़ी से डरती हैं। छड़ी ही मेरी रक्षा करती है और मैं छड़ी की रक्षा करता हूँ। अब तो हमारी मंजिल ही आने वाली है।

तुम इन्हें बंधन से मुक्त करो। इन्हें अपनी विचार-तरंगों से प्रभावित करो और इन्हें जन्म लेने के लिए मार्ग प्रशस्त करो। समय आने पर ऐसा करने का वायदा कर उन्हें लुप्त होने के लिए छोड़ दिया। हम दोनों सुबह चल कर कई दिन उपरान्त रामपुर के पास से चरवाई से थोड़ा पहले नया गाँव पहुँचे और ठीक तीन महीने बाद हम दोनों यहाँ से बिछुड़ गये। ये परम तपस्वी बैरागी बाबा रामदास जी हैं। आज भी वे तपोवन की एक गुफा में समाधिस्थ हैं। समाधिस्थ होने पर भी वे अपने अनेक रूप बना लेते हैं तथा यत्र-तत्र विचरण करते रहते हैं। चूँकि उक्त घटना को बहुत वर्ष हो गए हैं अतः अब संभचतः वे अपनी समाधि से उठकर अन्यत्र चले गये होंगे। ❑

बाबा मथुरादास

योगेश्वर मथुरादास एक दीर्घजीवी सन्त हैं। जनश्रुति है कि श्री मोतीलाल नेहरू के कोई पुत्र नहीं हो रहा था, अतः उन्होंने पं० मदनमोहन मालवीय से किसी सिद्ध सन्त का आशीर्वाद दिलाने की प्रार्थना की। महामना मदनमोहन मालवीय श्री मोतीलाल नेहरू को लेकर बाबा मथुरादास के पास गए। मथुरादास बाबा उन दिनों ऋषिकेश के आस-पास कहीं रह रहे थे। महामना ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया। कुशलक्षेम के बाद उन्होंने कातर वाणी में मोतीलाल नेहरू का दुःख कह सुनाया। मथुरादास बाबा ने बताया कि मोतीलाल के प्रारब्ध में तो पुत्रसुख लिखा ही नहीं है। महामना ने बाबा की बड़ी अनुनय विनय की तथा अपने योगबल से मोतीलाल के प्रारब्ध को बदलने की प्रार्थना की। मथुरादास बाबा ने उन लोगों की कातर वाणी सुनकर दयार्द्र होकर पं० मोतीलाल को पुत्र प्राप्ति का आशीर्वाद दे दिया।

चूँकि पं० मोतीलाल के प्रारब्ध में पुत्र प्राप्ति नहीं थी, अतः इसके लिए योगेश्वर को विशेष अध्यवसाय करना पड़ा। उन्होंने हिमालय के लिए प्रस्थान किया। वहाँ जाकर उन्होंने एक दुर्गम बर्फीली गुफा का अनुसंधान किया। इसमें जाकर योगेश्वर दीर्घकालीन समाधि में लीन हो गए। उनका शरीर तो वहाँ समाधिस्थ रहा किन्तु सूक्ष्म शरीर से बाहर आकर उन्होंने पं० मोतीलाल नेहरू के घर में पं० जवाहरलाल नेहरू के रूप में जन्म लिया।

पं० जवाहरलाल नेहरू के बारे में ज्ञातव्य है कि वे प्रधानमंत्री जैसे गुरुतर पद पर होते हुए भी जीवनपर्यन्त शीर्षासन करते रहे। निर्गुट राष्ट्रों का संगठन खड़ा करके उन्होंने तत्कालीन अमेरिकी गुट तथा रूसी गुट से राष्ट्रों को दूर रखा। इससे विश्व में गुटवाद की नीति नहीं पनप सकी तथा विश्व में घटने वाली घटनाओं का विवेचन तथा विश्लेषण गुण-दोष के आधार पर होने लगा। दोनों गुट भी अपने गुटों के हित चिन्तन के साथ विश्व की समस्याओं तथा घटनाओं को गुण-दोष के आधार पर देखने लगे। इससे प्रतिद्वन्द्विता के साथ नैतिकता तथा न्याय एवं सत्य को बढ़ावा मिला। सत्य तथा न्याय की दृष्टि से घटनाओं तथा समस्याओं को देखने के कारण उनका बुद्धिसम्मत हल निकलने लगा तथा युद्ध के अवसर तथा गुटबाजी कम हो गई। राष्ट्राध्यक्ष बुद्धि, समझदारी तथा न्याय की दृष्टि से काम करने लगे। इससे तृतीय विश्वयुद्ध के कारण एवं आधार शीघ्र नहीं विकसित हो सके। इसका परिणाम यह निकला कि जहाँ प्रथम विश्वयुद्ध के बाद द्वितीय विश्वयुद्ध कुछ वर्षों

के बाद ही हो गया था, वहीं इस समय युद्ध के उपकरणों तथा सामग्री का इतना विकास हो जाने के बावजूद भी १९४५ से लेकर लगभग आधी शताब्दी से अधिक वर्षों के बीत जाने पर भी संसार में अभी तक तीसरा विश्वयुद्ध नहीं हुआ।

इस प्रकार से विश्व को तीसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका से बचाने का श्रेय बहुत कुछ निर्गुट राष्ट्रों के समुदाय को जाता है तथा निर्गुट राष्ट्रों का समुदाय खड़ा करने का सर्वाधिक श्रेय पंडित जवाहरलाल नेहरू को जाता है, जो प्रथम तीन निर्गुट राष्ट्रों के समुदाय में विश्व के एक विशाल राष्ट्र का प्रतिनिधित्व प्रधानमंत्री के रूप में करते थे। इस प्रकार से यह मानना पड़ेगा कि विश्व को तीसरे विश्वयुद्ध की विभीषिका से दूर रखने में तथा विश्व शान्ति स्थापित रखने में पंडित जवाहरलाल नेहरू का प्रशंसनीय योगदान था। विश्वयुद्ध से लाखों करोड़ों लोगों का जीवन पीड़ामय, कष्टमय, वेदनामय तथा रोगमय हो जाता है। द्वितीय विश्वयुद्ध में हिरोशिमा तथा नागासाकी में गिराए गए बमों के कारण लाखों लोग अब तक मौत तथा रोग के शिकार हो चुके हैं।

अस्तु यह मानना पड़ेगा कि पंडित जवाहरलाल नेहरू का विश्वशान्ति तथा विश्व मानव के कल्याण के लिए सराहनीय योगदान था। ऐसा महान् कार्य कोई महान् व्यक्तित्व ही कर सकता है। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पंडित नेहरू के अन्दर कोई महान् आत्मा विद्यमान थी। पंडित जी का जीवनपर्यन्त शीर्षासन करना भी इसी बात की ओर संकेत करता है। अतः इस जनश्रुति को सरलता से झुठलाया नहीं जा सकता कि पं० नेहरू के अन्दर एक योगी की आत्मा विराजमान थी। जनश्रुति के आधार पर पंडित जी के दिवंगत होने पर मथुरादास बाबा का सूक्ष्म शरीर पुनः हिमालय में समाधिस्थ अपने स्थूल शरीर में प्रविष्ट हो गया। सत्य क्या है, इसे वास्तविक रूप में तो बड़े-बड़े योगी ही जान सकते हैं।

मथुरादास बाबा वस्तुतः एक महान् योगी हैं, जो अभी हिमालय में सशरीर विद्यमान हैं। मथुरादास बाबा के सानिध्य में २३ उत्कृष्ट कोटि के महात्मा हैं। महावतार बाबा, काशीनाथ, शान्ति माँ और नर्मदा माता इन्हीं में हैं। एक महायोगी के कथनानुसार महायोगियों एवं महासिद्धों की शक्तिशाली विचार-तरंगों से प्रभावित होकर विश्व में मानवीय भावनाओं को संरक्षण मिलता है, अन्यथा विश्व कब का विनाश श्रृंखलाओं द्वारा जकड़ लिया गया होता। मथुरादास बाबा एवं उनके सानिध्य के महात्माओं की टोली अधिकतर हिमालय के पिंडारी क्षेत्र में रहती है। ये महायोगी जब-तब हिमालय की गुफाओं में एकत्र होते हैं। यदा-कदा वे अन्य लोकों, ग्रहों या इसी भूमि पर भ्रमण के लिए निकल जाते हैं। अपने से संबंधित साधकों के

मार्गदर्शन के लिए भी ये लोग जाया करते हैं। वे महान् आत्माएँ जो हजारों वर्षों बाद जन्म लेने के लिए बाध्य हो जाती हैं, उनकी ये लोग बड़ी सहायता करते हैं।

ये पूर्णतया प्राकृतिक जीवन बिताते हैं। इनका सम्पूर्ण जीवन व क्रिया-कलाप मानव के कल्याण के लिए होता है। वैसे तो ये पूर्णतया आत्मदर्शी हैं, परन्तु ये सदा जीवरक्षा के लिए तत्पर रहते हैं। हिमालय ही इनका घर है, परन्तु वे देश के भिन्न-भिन्न खण्डों से सम्बन्धित हैं। इनका चिन्तन मनन सम्पूर्ण मानवता तथा समूचे विश्व के लिए होता है। देवता लोग भी इनसे कभी-कभी सहयोग लेते हैं। वे समस्याओं में ग्रस्त लोगों की विपत्तियों का समाधान अपने तरीके से निकालते हैं। ये महायोगी विश्व के सारे आविष्कारों से परिचित हैं। जगत् की सभी स्थितियों की इन्हें जानकारी रहती है। ये अपनी विचार-तरंगों को भेजकर, मानव हित के लिए शासकों की विचारधाराओं को मोड़कर बहुत से परिवर्तन करवाते हैं। ये समय को अपने साथ लेकर चलते हैं। समय के पीछे नहीं भागते।

जगत् के क्रियाकलापों का अवलोकन कर विकट स्थितियों के समाधान के लिए उपायों को खोजकर ये लोग कोई-न-कोई अपना प्रतिनिधि भेजते हैं या फिर मानव समुदाय में कार्यरत उपयुक्त व्यक्तियों को चुनकर उन्हें मार्गदर्शन देते हैं। ये आवश्यकतानुसार सभाओं का आयोजन करते हैं।

ये ग्रहों की स्थितियों में काफी परिवर्तन कर देते हैं, जिससे सम्भावित दुष्परिणामों को टाला जा सके। मानव मस्तिष्क तथा उसके क्रियाकलाप नक्षत्रों पर अत्यधिक निर्भर रहते हैं। ग्रहों के प्रभाव से आदमी जो कुछ नहीं करना चाहता, उसे भी कर डालता है। कभी-कभी ये ग्रह ऐसी स्थिति में आ जाते हैं कि संसार में प्रलय ढा जाए। ज्योतिष के विद्वान् तथा खगोलशास्त्री ऐसी भविष्यवाणियाँ करते हैं कि मानव मन में हलचल पैदा हो जाती है। मनुष्य सुख चैन की नींद छोड़कर उस वक्त की प्रतीक्षा करता रहता है और जब वह समय आता है तो कुछ भी ध्वंस नहीं होता। संभावित घटनाक्रम की रूपरेखा तैयार थी, भविष्यवक्ताओं ने नक्षत्रों के आधार पर अपनी भविष्यवाणियाँ की थीं, परन्तु घटनाक्रम बिलकुल बदल गया। इन कल्याणकारी घटनाचक्रों को टाल देने में इन महायोगियों का हाथ है। वे अपनी इच्छाशक्ति तथा क्रियाशक्ति से ऐसी दुर्घटनाओं को टाला करते हैं। वे युद्धों की स्थितियों में परिवर्तन कर देते हैं।

भारत के बारे में यह संभावना है कि यह अपना कायाकल्प करके २००० ई० में पुनः विश्व का एक महान् शान्ति सन्देशवाहक बनकर उदय होगा।

मथुरादास बाबा की प्रेरणा से हिमालय के पिंडारी क्षेत्र में कुछ वर्ष पूर्व महायोगियों, महाज्ञानियों तथा महासिद्धों की एक सभा आयोजित की गई थी। जिसमें जीवित महामानवों के साथ ही उन महासिद्धों ने भी भाग लिया जो कुछ पूर्व या बहुत पूर्व अपने लौकिक शरीरों का परित्याग कर चुके थे। वे अपने सूक्ष्म शरीरों से इस सभा में आए थे। जीवित महायोगियों में भी बहुत दूर, जो योगी समाधिस्थ थे, उन्होंने यहाँ आकर अपने दूसरे शरीर का निर्माण किया था। हिमालय के दूसरे अंचलों से कुछ योगी सशरीर उड़कर आये थे। यह वस्तुतः भारत के परमतत्त्ववेत्ताओं, ब्रह्मर्षियों, महर्षियों की सभा थी।

मथुरादास बाबा, कृपाचार्य, सर्वेश्वरानन्द, रामलाल व काशीनाथ गुफा के पास पहुँचे। गुफा में शान्ति माँ तथा दो अन्य साध्वी माताएँ विराजमान थीं। शांति माँ दौड़कर कृपाचार्य जी से लिपट गयीं। भाई-बहन स्नेह की तरंगों में खो गए। उन तपस्वियों की सम्पूर्ण साधना सिमट कर व्यावहारिक सत्ता में आ गई।

कुछ क्षणों के पश्चात् अनेक महासन्तों का आगमन होने लगा। कुछ सशरीर आ रहे थे तथा कुछ वहीं आकर स्थूल शरीरों का निर्माण कर रहे थे।

बुद्ध, महाबीर, वनखंडी, ईसामसीह, व्यास, ऋषभदेव, शंकराचार्य, कबीर, च्यांगदेव, ज्ञानेश्वर, शिरडी के साँईबाबा, रमण महर्षि, तैलंगस्वामी, नारायण स्वामी, दयानन्द, रामानुजाचार्य, वल्लभाचार्य आदि की परमपावन आत्माओं का शुभागमन हो चुका था। हिमालय का वह अंचल ऋषियों, मुनियों, योगियों, तत्त्ववेत्ताओं एवं सिद्धों की उपस्थिति से पुलकित हो रहा था।

यह उन दिव्य पुरुषों की बैठक थी, जो व्यक्तिगत, सामाजिक एवं राष्ट्रीय स्थितियों से ऊपर उठ चुके थे। वे अपनी विचारधाराओं का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। वे अध्यात्म की पराकाष्ठा थे तथा चिन्तन के चूड़ान्त निदर्शन थे। उनकी एक ही दृष्टि मानव के लिए मंगलकारिणी थी।

अब तक महायोगी गोरखनाथ, काल्पीनाथ, मांया योगिनी तथा अघोरेश्वर भैरवनाथ का भी आगमन हो चुका था।

सभा में सभी ने अपने-अपने विचार रखे। सभी ने मानव कल्याण के लिए शान्ति की तरंगें भेजीं। सभी इस बात पर सहमत थे कि जो प्रतिकूल परिस्थितियाँ मानव को घेरती चली जा रही हैं, उनके प्रभाव को काफी सीमा तक कम किया जाय। जो घटना चक्र बन चुका है, उसकी बात तो अलग है, किन्तु भविष्य में सद्विचारों, सद्प्रवृत्तियों को पोषण मिले।

मथुरादास बाबा ने सबको भोजन के लिए कहा। शांति ने सूर्या और यशोदा माँ के साथ सारी व्यवस्था सँभाल ली। सभी दिव्य लोगों ने एक ही साथ भोजन किया। भोजन की व्यवस्था लौकिक जगत् की ही तरह थी। सभी लोग भोजन के उपरान्त अपनी-अपनी दिशा को लौट गए।

पायलट बाबा ने एक बार मथुरादास बाबा के और भी दर्शन किए थे। बात हिमालय में पिण्डारी नदी के क्षेत्र से सम्बन्धित है। पायलट बाबा के ही शब्दों में—

"कुछ सैलानी आए और चले गये। हमने दिन भर घूमकर बिता दिया। पुनः रात होते ही मैंने गुफा से निकलकर चल दिया। पिण्डार नदी को पार कर नन्दाघाट के ग्लेशियर से निकलकर प्वालीद्वार, वल्जूरिया और नन्दाघाट चोटियों के मध्य बहुत बड़ा मैदान है। उस मैदान को पार करने के बाद बर्फ से लदी ऊँची चोटियाँ हैं। उसी के नीचे चट्टानी हिस्सा है। उसी में एक बहुत बड़ी गुफा है और मन्दाकिनी ताल है। मैं वहीं चला जा रहा था। चाँदनी रात मेरा साथ दे रही थी। मैं ज्यों ही पहुँचा, गुफा के बाहर एक साध्वी ने मेरा स्वागत किया और वह मुझे लेकर गुफा में प्रवेश कर गयी। पूरी गुफा प्रकाश से नहाई हुई थी। पीले रंग की रोशनी फैल रही थी और तेईस महापुरुष पहले से ही पंगत में बैठे हुए थे। एक लाइन में एक थाल खाली पड़ी हुई थी। साध्वी ने मुझे एक गर्म साल और लोटा दिया और वहाँ बैठने का इशारा किया। मैं चौबीसवें स्थान पर था। लोग काफी देर से इंतजार में थे। हम सबने संकल्प शक्ति से प्राप्त अभिमंत्रित भोज्य पदार्थों को पाया। अलग एक तख्ते पर एक महात्मा बैठे थे। वे बहुत तन्दुरुस्त नजर आ रहे थे। जटाएँ सफेद हो गयी थीं। मस्तक बहुत बड़ा था। वे सबसे अलग बैठे थे। साध्वी ने मुझे ले जाकर उनके समक्ष खड़ा कर दिया। बाबा थोड़ी देर तक मुझे देखते रहे, फिर बोले- "भौतिक शरीर से सशरीर आने का प्रयास यहाँ न करना। वे दिव्य महापुरुषों की दिव्य आत्माएँ हैं। ये अपने शरीर का निर्माण यहाँ करती हैं। इनका अपना भौतिक शरीर अलग-अलग कन्दराओं में पड़ा है। आज मैंने प्रीतिभोज दिया था। वे हिमालय के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों से आये हैं। तुम तो अचानक दिखाई पड़ गए।"

धीरे-धीरे सभी महात्मा चले जा रहे थे। मैं बहुतों को पहचान रहा था पर वे मुझसे नहीं मिल रहे थे। सबको जाने की लगी थी। वहाँ पर मैं रह गया और साध्वी बैठी रहीं। बाबा ने तब तख्ते पर बैठे-बैठे अनावृत्त किया जो आवरण भौतिक पर लगा रहता है, उसे हटाकर सूक्ष्म जगत् की जानकारी दी। फिर विश्व

के भौतिक चहल-पहल में रुचि ली। राजनीति की चर्चा की और देश के उतार-चढ़ाव की जानकारी दी। फिर मुझे साध्वी द्वारा गुफा तक पहुँचाने को कहकर चल दिया। अल्प समय में ही उन्होंने मुझे गुफा में पहुँचा दिया, गुफा में जाकर मैं लेट गया। वे मथुरादास बाबा थे। वृन्दावनवासी थे मदनमोहन मालवीय की प्रार्थना एवं मोतीलाल नेहरू की अविरल भक्ति से प्रसन्न होकर अपना शरीर त्यागकर जवाहरलाल नेहरू बने थे। कर्मयोगी के रूप में लम्वे समय तक रहकर पुनः अपनी पूर्व स्थिति में आकर हिमालय में विशुद्ध महापुरुषों के बीच रह रहे हैं। स्वच्छन्द-स्वतंत्र।

बहुत देर बाद मैं समझ पाया कि आखिर मथुरादास बावा भारत के बारे में और विश्व राजनीति के बारे में इतनी रुचि क्यों ले रहे हैं। रह-रहकर वे कुछ-न-कुछ पूछ डालते थे। देश की राजनीति का भविष्य में क्या होगा- बहुत स्पष्ट विचार उन्होंने व्यक्त किया। पर वह सब यहाँ का विषय नहीं है। मथुरादास बावा से मिलने के बाद मैं पुनः गुफा में आकर विचारों में खो गया।

❑

दशरथ नारायण शुक्ल

दशरथ नारायण शुक्ल का जन्म उ० प्र० के उन्नाव जनपद में भगवती भागीरथी के तट पर हुआ था। आपका बाल्य काल कलकत्ता में बीता। शुक्ल जी ने हिन्दी तथा इतिहास विषयों में एम० ए० किया है। प्रस्तुत पुस्तक के अतिरिक्त आपकी निम्नलिखित अन्य कृतियां हैं—

१. भारत के सिद्ध सन्तों की खोज
२. भारत के महान् साधक
३. भारत के महान् प्रेरणा श्रोत
४. भारत के महान साधकों की खोज
५. हिमालय के योगिराज
६. योगवाशिष्ठ की आध्यात्मिक कहानियाँ
७. अनासक्त कर्मयोगियों की कहानियाँ
८. सर्वोच्च ज्ञान प्रधान तीन उपनिषदें
९. ज्ञान तथा ध्यान
१०. विश्व बिख्यात सन्तों के साधना के अनुभव
११. भारत के सिद्ध सन्त
१२. आदि शङ्कराचार्य
१३. विश्व विख्यात जीवित समाधियाँ
१४. मुर्दों को जीवित करने वाले योगेश्वर
१५. ध्यान के दिव्य अनुभव तथा महाशक्तियाँ
१६. Maharshi Aurobindo
१७. Meditation & Knowledge

अप्रकाशित—

१. गीता पर हिन्दी तथा अंग्रेजी में लिखी गयी टीका।
२. झोपड़ी से राष्ट्रपति-भवन (उपन्यास)

इस समय श्री शुक्ल उ० प्र० में एक वरिष्ठ पी० सी० एस०अधिकारी के रूप में कार्यरत हैं।